ISSN-0971-8397

योजना

अप्रैल 2011 | विकास को समर्पित मासिक | ₹ 10

मानवाधिकार और सामाजिक न्याय

जननीसुरक्षायोजना

- जननीमृत्युदरमेंगिरावट
- गर्भवतीमहिलाओंकोचिकित्सावनकदसहायता
- प्रसवपूर्वतथाप्रसवकेबादमाताऔरशिशुकीदेखभाल

भारत निर्माण
का सपना बुना
तरक्की हुई
कई गुणा

YH-04/11/2

योजना

वर्ष : 55 • अंक : 4 • अप्रैल 2011 • चैत्र-वैशाख, शक संवत 1933 • कुल पृष्ठ : 56

प्रधन संपादक
नीता प्रसाद

वरिष्ठ संपादक
राकेशरेणु

संपादक
रेमी कुमारी

संपादकीय कार्यालय

538, योजना भवन, संसद मार्ग,
नयी दिल्ली-110 001
दूरभाष : 23717910, 23096738
टेलीफैक्स : 23359578
ई-मेल : exeed.yojana@gmail.com
yojanahindi@gmail.com
वेबसाइट : www.yojana.gov.in
www.publicationsdivision.nic.in
a) dpd@nic.in
b) dpd@hub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
जे.के. चंद्रा

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन)
सूर्यकांत शर्मा
दूरभाष : 26100207, 26105590
फैक्स : 26175516
ई-मेल : pdjucir_icm@yahoo.co.in

आवरण : **साधना सक्सेना**

इस अंक में

संपादकीय	–	5
सपना समतामूलक समाज का	न्यायमूर्ति के.जी. बालाकृष्णन	6
आदिवासियों की उपेक्षा और अधिकार	एन.सी. सक्सेना	9
भ्रष्टाचारमुक्त शासन व्यवस्था का अधिकार	अरविंद केजरीवाल	13
मुक्त बाज़ार से सामाजिक न्याय की नाहक उम्मीद	रहीस सिंह	16
सुशासन और मानवाधिकार	सुभाष शर्मा	19
अन्याय के पुनर्जन्म काल में सामाजिक न्याय	जगदीश प्रसाद मीणा	21
वैकल्पिक मातृत्व की व्यवस्था में शिशु के अधिकार	प्रतिभा	23
क्या आप जानते हैं : भारत में मानवाधिकार संरक्षण	–	28
विशिष्ट समूहों के मानवाधिकार	सुनील	29
समाजीकरण और बहुलता की स्वीकृति ज़रूरी	सरोज कुमार शुक्ल	31
स्वस्थ रहने का अधिकार	ऋतु सारस्वत	33
महिला अधिकार बनाम मानवाधिकार	पिंकी पूणिया	35
मरीजों के मानवाधिकार	प्रदीप कुमार	37
कैदियों के साथ मानवता का व्यवहार	अरविन्द कुमार तिवारी	39
मानव अधिकार तथा मीडिया	अंशु गुप्ता	41
मानवाधिकार एवं कन्या भ्रूण हत्या	दिव्या पांडे	43
भारतीय लोकतंत्र में मानवाधिकार	प्रतापमल देवपुरा	45
जहां चाह वहां राह : मिट्टी की उत्पादकता बहाली	रतन मणि लाल	47
ख़बरों में	–	49
नये प्रकाशन : अथ मानव अधिकार गाथा	रचना	51

योजना हिंदी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, तमिल, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नयी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'निदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें : व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक IV, लेवल VII, आर.के. पुरम, नयी दिल्ली-110066 दूरभाष : 26100207, 26105590, तार : सूचनाप्रकाशन।

सदस्य बनने अथवा पत्रिका मंगाने के लिए आप हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर भी संपर्क कर सकते हैं :- सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष : 24367260, 5610), हाल सं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष : 23890205) * 701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष : 27570686) * 8, एसप्लानेड ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष : 22488030) * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष : 24917673) * प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुवनंतपुरम-695001 (दूरभाष : 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष : 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष : 25537244) * बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष : 2683407) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-H, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष : 2225455) * अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर, पाल्दी, अहमदाबाद-380007 (दूरभाष : 26588669) * के.के.बी. रोड, नयी कॉलोनी, मकान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष : 2665090)

चंदे की दरें : वार्षिक : 100 रु. **द्विवार्षिक :** 180 रु.; **त्रैवार्षिक :** 250 रु.; **विदेशों में वार्षिक दरें : पड़ोसी देश:** 500 रु.; **यूरोपीय एवं अन्य देश :** 700 रु.

'योजना' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। ज़रूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए 'योजना' उत्तरदायी नहीं है।

आपकी राय

असहाय नहीं हैं महिलाएं

योजना का ग्राम सभा पर केंद्रित अंक पढ़ा। अंक के सारे लेख काफी ज्ञानवर्धक, रोचक तथा नयी जानकारियों से परिपूर्ण लगे। संपादकीय हर बार की तरह उत्साहवर्धक और समस्याओं के प्रति ध्यान दिलाने वाला है। दिसंबर 1992 में पारित 73वें और 74वें संशोधन के द्वारा संविधान में भाग 9 और 9क जोड़ा गया। इन दो भागों में अनुच्छेद 243 से 243ह तक कुल 34 नये अनुच्छेद तथा 11वीं और 12वीं दो नयी अनुसूची को जोड़ा गया।

गांधीजी ग्राम राज्य के पक्षधर थे। उनके शब्दों में "स्वाधीन भारत की राजनीतिक व्यवस्था गांव में होनी चाहिए।" लेकिन गांधीजी के प्रति समादर दिखाते हुए संविधान सभा ने नीति-निर्देशक सिद्धांत के अंतर्गत अनुच्छेद 40 में इसका उल्लेख शामिल किया। अनुच्छेद 40 के अनुसार राज्य पंचायत सदस्यों में 10 लाख महिलाएं हैं जो महिला सशक्तीकरण के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हो रही हैं। पंचायतों में निर्वाचित महिलाओं की संख्या विश्व में निर्वाचित महिलाओं की कुल संख्या से भी अधिक है। बिहार, मध्य प्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश सरकार ने महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण पंचायतों में दिया है। इन राज्यों में महिलाओं ने अपने कार्यों की बदौलत नये-नये कीर्तिमान स्थापित किए हैं। बिहार में तो पंचायतों में निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधियों की संख्या 54 प्रतिशत तक जा पहुंची है। पंचायतों में महिलाओं को आरक्षण देने के फलस्वरूप जो महिलाएं जनप्रतिनिधि के रूप में चुनकर आई हैं वे अपने काम को ईमानदारीपूर्वक अंज़ाम दे रही हैं। इससे यह साबित होता है कि महिलाएं असहाय और निष्क्रिय नहीं हैं। ❑

अमित कुमार गुप्ता
रामपुर नौसहन, हाजीपुर, बिहार
ई-मेल : kramitkumar2@gmail.com

ज्ञानवर्धक और प्रेरणादायी

योजना के फरवरी अंक में ग्राम सभाओं के विकास के बारे में पढ़ने को मिला। इससे यह सिद्ध होता है कि अगर योजनाओं की सही जानकारी हो तो ग्रामीण जन भी अपनी आर्थिक स्थिति सुधार सकते हैं। विजय कुमार कर्ण का लेख 'आदि शास्त्रों में ग्राम सभा' बहुत ही अच्छा लगा। एन. ललिता का लेख 'स्थानीय संसाधनों के सतत प्रबंधन में स्वसहायता समूह' बहुत ही अच्छा लगा। इससे यह सिद्ध होता है कि स्थानीय उत्पादों को थोड़े परिश्रम से उपयोगी वस्तुओं में बदला जा सकता है। इससे अपनी और अपने जैसे दूसरों की ग़रीबी दूर की जा सकती है।

शोधयात्रा में प्रकाशित आलेख 'बांस प्रसंस्करण मशीन' में तोषी द्वारा बनाई गई मशीन के बारे में पढ़ने को मिला जिससे बांस के विभिन्न उत्पाद बनाने में सहायता मिलती है। कुल मिलाकर यह अंक बहुत ही ज्ञानवर्धक तथा प्रेरणादायी लगा। ❑

शशिकांत त्रिपाठी
आवास विकास कालोनी, गोरखपुर

प्रतिभा का पलायन : एक गंभीर समस्या

वैश्वीकरण के इस दौड़ में भारतीय प्रतिभा की मांग विश्वभर में बढ़ गई है। आज भी हमारा देश उच्चस्तरीय शिक्षा प्रदान करने वाले देशों में अग्रणी है। मानव संसाधन की दृष्टि से भारत किसी देश का मोहताज़ नहीं है। देश टॉपर्स को अच्छी सुविधा तथा अच्छा पैकेज़ नहीं दे पा रहा है, जिसके कारण प्रतिभा पलायन होना लाज़िमी है।

भारतीय न केवल अपने आपको भिन्न-भिन्न परिस्थिति में ढाल लेते हैं, बल्कि हर नियोक्ताओं की पहली पसंद बन जाते हैं। भारत यदि अपने मानव संसाधन का भरपूर दोहन कर पाता तो आज विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में खड़ा होता। प्रतिभा का पलायन रोकने के लिए भारत सरकार को उचित पहल के साथ-साथ कुछ कड़े नियम लागू करने की आवश्यकता है। प्रतिभा का पलायन देश के भविष्य के साथ खिलवाड़ है। ❑

सुनील कुमार कर्मकार
बायसी, पूर्णिया, बिहार

लोकतंत्र की प्रथम पाठशाला

योजना के फरवरी 2011 अंक में जन-जन तक जनतंत्र के बारे में पढ़ने को मिला। मैथ्यू सी. कुन्नुमकल के आलेख 'भारत में ज़मीनी जनतंत्र' से पंचायत व्यवस्था की शक्तियां, कमज़ोरियां, चुनौतियां, ताज़ा रुझान और भावी दिशाओं के बारे में जानने को मिला।

मैं उस प्रदेश का निवासी हूं जहां पंचायतीराज व्यवस्था की नींव रखी गई थी। राजस्थान ने सन् 1857 की क्रांति से लेकर सन् 1947 तक अनगिनत कुर्बानियां पेश की है। स्वतंत्र भारत में लोकतंत्र के हाथ मज़बूत करने में भी राजस्थान पीछे नहीं रहा है। किंतु आज पंचायतीराज में भी आरक्षण व्यवस्था लागू होने के कारण योग्य उम्मीदवार लाभ से वंचित

रह जाते हैं। संसद का रास्ता इन पंचायतों से होकर ही गुज़रता है।

अगर हमें भारतवर्ष में लोकतंत्र को मज़बूती प्रदान करनी है तो लोकतंत्र की इस प्राथमिक पाठशाला में सुधार करना होगा। सुधार के लिए हमें मतदाताओं को जागरूक और शिक्षित करना होगा। हम काग़जों में चाहे जितना विकास दिखा दें, किंतु हमें वास्तविक की और ध्यान भी देना चाहिए। अगर ग्राम पंचायतें मज़बूत होंगी तो भारतवर्ष और सशक्त व खुशहाल बनेगा। ❑

दिलावर हुसैन कादरी
मेहराबाद, जैसलमेर, राजस्थान

महिला ग्राम प्रधान को ही काम करने दें

मैंने 'ग्राम सभा' केंद्रित *योजना* का फरवरी अंक पढ़ा। इस अंक में ग्राम सभा से संबंधित सभी महत्वपूर्ण जानकारी तथा लेख काफी अच्छे लगे। पूर्वोत्तर के राज्यों त्रिपुरा, सिक्किम, असम, अरुणाचल प्रदेश, मिज़ोरम, मेघालय व मणिपुर के विषय में, उनकी ग्राम सभाओं के विभिन्न कार्यों के विषय में तथा विभिन्न जिलों में स्वसहायता समूहों के द्वारा किए जा रहे उत्कृष्ट कार्यों की भी अच्छी जानकारियां दी गईं है।

'ग्राम सभाओं ने बदल दी गांवों की तस्वीर' और 'संवेदनहीन क्यों हैं वित्तीय संस्थाएं' लेख काफी रोचक हैं। 'विकास में ग्राम सभा की भूमिका' शीर्षक लेख में बिहार में ग्राम सभा के विषय में विस्तारपूर्ण जानकारी दी गई है। 'सफ़रनामा राजस्थान में पंचायती राज का' शीर्षक लेख में राजस्थान के पंचायती राज अधिनियमों की पूरी जानकारियां दी गई हैं, जो काफी रोचक लगीं।

'व्यक्तिगत प्रयासों ने खोली तरक्क़ी की राह' शीर्षक लेख काफी प्रेरणादायक है। उत्तराखंड के चंपावत जिले के तोली गांव के लोगों ने किस प्रकार मेहनत कर के गधेरे के पानी को गांव तक लाकर टैंकों में इकट्ठा किया और किस प्रकार अपने खेतों को हरा-भरा किया, इसकी पूरी जानकारी आपने दी जोकि काफी लाभदायक है। उत्तराखंड में सभी को इस गांव के लोगों से प्रेरणा लेनी चाहिए, क्योंकि पानी की समस्या उत्तराखंड के पहाड़ों में आम बात है। कई गांव ऐसे हैं जिनसे सड़के कोसों दूर हैं। ग्रामीणों को घंटों चलकर सड़क तक जाना पड़ता है। अगर ग्राम सभाएं विकास के कार्य करने के लिए कुछ सोचती भी हैं तो उनके सामने कई मुश्किलें सामने खड़ी हो जाती हैं। सड़क से मीलों दूर होने के कारण हमारे मेहरागांव में काफी कार्य नहीं हुए हैं। ऐसे में ग्रामीणों को कई दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। उत्तराखंड सरकार को सबसे पहले प्रत्येक गांव में सड़क लाने के प्रयास करना चाहिए। अगर गांव तक नहीं तो कम-से-कम आस-पास के स्थानों तक सड़क से सभी गांव नहीं जुड़ेंगे तब तक विकास नहीं हो सकता।

आज गांवों में मनरेगा द्वारा कई कार्य किए जा रहे हैं। इससे कई ग्रामीणों को रोज़गार मिल रहा है। स्कूलों में मिड-डे मिल योजना चलाई जा रही है। ग्राम सभाओं की देखरेख में यह सब हो रहा है। पर मनरेगा हो या मिड-डे मिल, दोनों योजनाओं में ही धड़ल्ले से भ्रष्टाचार जारी है। ग्राम सभाएं भी कई तरह के विवादों में उलझी हैं। ग्राम प्रधान के पदों पर आज महिलाएं भी खड़ी हो रही हैं। लेकिन कई बार देखा गया है कि महिला ग्राम प्रधान तो घर पर ही रहती हैं और उनका पति उनके स्थान पर ग्राम प्रधान के कार्य करता है तथा ग्राम प्रधान बना फिरता है, जोकि ठीक नहीं है।

महेन्द्र प्रताप सिंह
ग्राम मेहरागांव, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)

योजना को साप्ताहिक करें

मैं *योजना* का फरवरी अंक रांची में एक बुक स्टॉल पर देखा। देखते ही यह एहसास हुआ की मुझे कोई ज़रूरी वस्तु मिल गई है। आपकी पत्रिका उन सभी लोगों के लिए एक प्रेरणा स्रोत है जो सोचते हैं कि विकास केवल शहरों में ही संभव है। आपकी पत्रिका पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि अब आने वाले समय में लोग गांवों से शहरों की तरफ नहीं बल्कि शहरो से गांवों की तरफ पलायल करेंगे। आपकी पत्रिका सराहनीय है। अगर संभव हो तो *योजना* को मासिक की जगह साप्ताहिक करने का प्रयत्न करें। ❑

कौसर उस्मान
जामिया नगर, नयी दिल्ली
ई-मेल : kauserusman@gmail.com

योजना
आगामी अंक

मई 2011

योजना का मई 2011 अंक **हथकरघा और हस्तशिल्प** पर केंद्रित होगा।

जून 2011

योजना के जून 2011 अंक का केंद्रीय विषय है **आधार** परियोजना।

अब इसकी शिकायत करने विदेश जायेंगे क्या?

जागो ग्राहक जागो

किसी भी विदेशी उत्पाद पर आयातक का नाम व पता अवश्य लिखा होना चाहिए।

अगर पैकेट पर उपरोक्त जानकारी नहीं है तो अपने राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश के विधिक माप विज्ञान नियंत्रक/निरीक्षक से संपर्क करें।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें : **www.fcamin.nic.in**

राष्ट्रीय उपभोक्ता हेल्प लाइन नं.
1800114000 पर मुफ्त कॉल करें।
(टोल फ्री : सोमवार–शनिवार प्रातः 9.30 बजे से सायं 5.30 बजे) :
011-27662955, 56, 57, 58 (सामान्य कॉल दरें लागू)

जनहित में जारी :
भारत सरकार
उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय
उपभोक्ता मामले विभाग
कृषि भवन, नई दिल्ली – 110 001

YH-4/11/5

संपादकीय

सच्ची शांति और आज़ादी तभी हासिल की जा सकती है जब हम प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति प्रदत्त मानवीय गरिमा का सम्मान करें और ऐसी सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था कायम करें जो सबके लिए समान और न्यायपूर्ण हो। इस सच को हम दो विश्व युद्धों की विभीषिका झेलने के बाद स्वीकार कर पाए हैं। मानवाधिकारों का सार्वभौम घोषणापत्र भले ही औपचारिक रूप से सभी राष्ट्रों पर बाध्यकारी नहीं हो लेकिन अंतरराष्ट्रीय कानून का हिस्सा होने के नाते यह दुनियाभर के देशों की राष्ट्रीय चेतना को प्रभावित करती है और उन पर अपने देशवासियों हेतु अधिकार व न्याय सुनिश्चित करने के लिए नैतिक दबाव बनाती है।

मानवाधिकारों के प्रति भारत की निष्ठा संविधान के विविध प्रावधानों में स्पष्ट देखी जा सकती है लेकिन यथार्थ के धरातल पर उन्हें सुनिश्चित करना निश्चय ही आसान नहीं है। दुनिया का संभवतः कोई ऐसा दूसरा देश नहीं है जहां इतनी विभाजनकारी और विविधतापूर्ण प्रवृत्तियां हों जितनी कि हमारे देश में हैं। यह विविधता क्षेत्र, धर्म, लिंग, जाति, भाषा आधारित है। आर्थिक और शैक्षिक स्थिति आधारित भेद भी यहां व्याप्त हैं। इनके अलावा शारीरिक और इससे जुड़ी अक्षमताओं से ग्रस्त लोग तथा आंतरिक झगड़ों, प्राकृतिक आपदाओं, औद्योगीकरण आदि से बेघर हुए लोग हैं जिनके अधिकारों की रक्षा ज़रूरी है। आर्थिक विकास और तीव्र नगरीकरण के परिणामस्वरूप अन्य कई कमज़ोर तबके सामने आए हैं जिनमें विस्थापन के शिकार, झुग्गी-बस्तियों में रहने वाले लोग, औद्योगिक श्रमिक तथा पर्यावरण-क्षरण से प्रभावित लोग शामिल हैं। इसलिए जब भारत में सभी नागरिकों के लिए मानवाधिकार और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने की चर्चा होती है तो वह एक छोटे से, सरलता से संभाले जाने योग्य, समजातीय आबादी के मानवाधिकारों की चर्चा नहीं होती। वह वस्तुतः एक अरब से ऊपर विविधतापूर्ण जनशक्ति के लिए मानवाधिकार सुनिश्चित करने से जुड़ी होती है जिनके हित कई बार सीधे-सीधे एक-दूसरे से टकराते प्रतीत होते हैं।

मानवाधिकारों के मामले में भारत की स्थिति एक ऐसे विद्यार्थी की है जिसकी उपलब्धियां कम नहीं हैं, लेकिन उसे अभी लंबी यात्रा तय करनी है। इसलिए जहां हमारी नारियां सशक्तीकरण के मार्ग पर सतत अग्रसर हैं, वहीं बड़ी तादाद में बच्चे अभी भी बुनियादी शिक्षा से वंचित हैं और मज़दूरी करने के लिए विवश हैं। वृद्धजनों और विकलांगों की दीर्घकालिक तथा सतत देखभाल करने वाली हमारी मशीनरी और संस्थाएं अब भी बेहद सतही हैं। सरकार जहां समावेशी विकास सुनिश्चित करने की दिशा में तेज़ी से आगे बढ़ रही है वहीं आम मानस में जाति और क्षेत्र आधारित विभाजन अब भी कुंडली मारे बैठा है। लेकिन हमारी कमज़ोरियां चाहे जो भी हों, हम इस बात पर गर्व कर सकते हैं कि मानवाधिकार सुनिश्चित करने और सामाजिक न्याय हासिल करने की हमारी संरचना काफी मज़बूत है। न्यायपालिका ने इसे बार-बार सुनिश्चित किया है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग, इस क्षेत्र में कार्यरत अनेकानेक स्वयंसेवी संगठन तथा हमारी केंद्र और राज्य सरकारें उपयोगी और अर्थपूर्ण कानून बनाकर उन्हें लागू कराने हेतु सक्रिय हैं। उनके प्रयास हमारी उम्मीद को आधार प्रदान करते हैं।

योजना के प्रस्तुत अंक में हमने आपके लिए अधिकारों और न्याय के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालते विशेषज्ञों के आलेख शामिल किया है जिनसे हमारे देश की शक्ति और कमज़ोरियों का पता चलता है और जो हमें आगे का रास्ता दिखाती हैं। ❑

मानवाधिकार और सामाजिक न्याय

सपना समतामूलक समाज का

● न्यायमूर्ति के.जी. बालाकृष्णन

जब सब मिलकर अपने प्रयासों और शक्तियों को लोगों के साथ जोड़ने और समर्थ बनाने में लगाएंगे तभी हम वह परिवर्तन ला सकेंगे जिसे महात्मा गांधी देखने की तमन्ना रखते थे

मानवाधिकारों के लिए बेहतर वातावरण प्रदान करने और देश की न्यायिक व्यवस्था और मानवाधिकारों के माध्यम से सामाजिक न्याय की प्राप्ति पर लेखन बहुत ही समाचीन है। अमरीकी दार्शनिक जॉन राल्स लिखते हैं कि सामाजिक न्याय इस धारणा पर आधारित है कि किसी समाज को तभी समतावादी माना जा सकता है जब वह समानता और एकजुटता के सिद्धांतों पर आधारित हो और वहां मानवाधिकारों का सम्मान तथा प्रत्येक व्यक्ति के सम्मान की रक्षा की जाती हो। न्यायप्रिय समाज वह है जहां विकलांगों, वंचितों और निर्बलों को एक सीमा तक संरक्षण प्राप्त होता है। वहां जंगल का कानून नहीं चलता जहां 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का सिद्धांत लागू होता हो। एक सभ्य समाज में अपेक्षाकृत अधिक आक्रामक सदस्यों की महत्वाकांक्षाओं और लोभ पर समुचित नियंत्रण की व्यवस्था होती है और समाज के निर्बल एवं वंचित वर्गों को विशेष सुरक्षा मिली होती है। ये विचार सामाजिक न्याय की किसी भी योजना के बुनियादी तत्व होते हैं और इनकी उपेक्षा से समाज नर्क बन जाएगा। एक सीमित अर्थ में देखा जाए तो सामाजिक न्याय के अधिकार को निर्बलों, बुजुर्गों, असहायों, निराश्रितों, महिलाओं, बच्चों और अन्य वंचित लोगों का अधिकार कहा जा सकता है। जीवन की निर्दयी स्पर्धा से इन लोगों को संरक्षण प्रदान करना सरकार का दायित्व है। यह अधिकारों का पुलिंदा है। दूसरे अर्थ में यह अन्य अधिकारों का परिरक्षक होता है। यह तो अमीरों और ग़रीबों के बीच संतुलन बनाए रखने वाला पहिया है।

जैसाकि भारत के संविधान की प्रस्तावना और संविधान के चतुर्थ भाग, अर्थात राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों से स्पष्ट है, हमारे संविधान निर्माता समाज के निर्बल वर्गों को सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता के प्रति पूर्णत: सजग थे। सामाजिक न्याय पूरे विश्व में, विशेषकर वैश्वीकरण के व्यापक संदर्भ में अति आवश्यक मुद्दा बन चुका है। वैश्वीकरण के कारण सरकारों और उनके नागरिकों के बीच संबंधों की पारंपरिक भूमिकाओं में बदलाव आ रहा है और यह सामाजिक-आर्थिक न्याय की प्राप्ति के लिए अनेक चुनौतियां पेश कर रहा है, चाहे वह विनाशकारी वित्तीय संकट के रूप में आवश्यक वस्तुओं के बढ़ते मूल्यों के रूप में हो या फिर विश्व व्यापार संगठन, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक और बहुराष्ट्रीय कंपनियों जैसे परराष्ट्रीय निकायों के बढ़ते प्रभाव के रूप में हो।

मानवाधिकारों को समाज के सभी सदस्यों, विशेषकर सरकार और उसकी एजेंसियों के व्यवहार की उपलब्धियों और सिद्धांतों के मानक के तौर पर देखा जाता है। मानवाधिकारों को समाज की आधारशिला माना जाता है और यदि उसका अनुपालन न किया जाए तो समाज बिखर जाएगा। मानव जाति के सम्मान की रक्षा और उसके उन्नयन से ही समाज को बनाए रखा जा सकता है।

मानवाधिकारों के बुनियादी घोषणापत्र की सर्वप्रथम झलक मैग्नाकार्टा (सन् 1215 का इंग्लैंड का प्रसिद्ध आज्ञापत्र) अमरीका का स्वातंत्र्य युद्ध और फ्रांसीसी क्रांति में दिखाई देती है। उनका स्वरूप प्रधानत: नकारात्मक अधिकारों का था। जैसे– राज्य को कतिपय बुनियादी अधिकारों के उपयोग में दख़ल नहीं देना चाहिए। परंतु द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एक ऐसी अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था कायम करने के प्रयास शुरू हुए जिसमें युद्ध की विभीषिका दोहराई न जा सके। इस व्यवस्था की दरकार थी इसलिए कि लोगों के नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को संरक्षण मिले और सभी राष्ट्र इसे मानने के लिए बाध्य हों। परंतु इसी के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय समिति को केवल अधिकारों की रक्षा ही नहीं करनी थी,

बल्कि कुछ सकारात्मक अधिकारों को लोगों को दिलाना था जोकि मुख्यत: आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के रूप में थे। इन सकारात्मक अधिकारों के लिए संसाधनों के उपयोग से जुड़ी कुछ सकारात्मक कार्यवाही की आवश्यकता थी और इसी तारतम्य में सन् 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकारों के सार्वभौम घोषणा को अंगीकार किया। इनमें नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के साथ-साथ आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकार शामिल थे।

यह अनुभव किया गया कि नागरिक एवं राजनीतिक तथा आर्थिक, सामाजिक और नागरिक अधिकारों के बीच जो भेद था वह कृत्रिम और बहुत क्षीण था। अधिकारों का केवल उल्लंघन होने से बचाने में किसी संसाधन के उपयोग की आवश्यकता नहीं हो सकती थी। परंतु संरक्षण को यदि स्थायी रूप देना है तो इन अधिकारों के संरक्षण की उपयुक्त व्यवस्था के लिए पर्याप्त क़दम उठाने होंगे। मानवाधिकारों की एक प्रमुख विशेषता उनकी निष्ठा और समग्रता होती है, क्योंकि मानवीय सम्मान की प्रकृति ही ऐसी होती है कि उसका विभाजन नहीं किया जा सकता। परंतु लोगबाग अन्य किसी बात पर ध्यान दिए बगैर केवल व्यक्तिगत अधिकारों को ही संतुष्ट करने में लगे हुए हैं, चाहे वह भाषण की स्वतंत्रता हो या संघ/संस्था का गठन हो या फिर अत्याचार से मुक्ति हो अथवा भोजन, आश्रय या शिक्षा का अधिकार जैसे आर्थिक और सामाजिक अधिकार हों।

तीसरी दुनिया के देश अर्थात विकासशील देशों की मांग है कि उन्हें भी अन्य राष्ट्रों के समान अधिकार और स्थिति मिले। इससे विकास के अधिकार की घोषणा का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस घोषणापत्र में विकास की परिभाषा एक ऐसे अधिकार के रूप में की गई है जिसमें सभी प्रकार के मानवाधिकारों को हासिल करने की बात कही गई है, चाहे वह नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार हो अथवा बच्चों और महिलाओं के अधिकारों से संबंधित हो।

इस प्रकार मानवाधिकारों को एक नया आयाम दिया गया और विकास के अवयव को एक ऐसी व्यापक आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रिया निरूपित किया गया, जहां सभी अधिकारों को हासिल किया जा सकता है। परंतु विकास केवल जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) की वृद्धि अथवा रोज़गार अथवा निर्यात संवर्धन की मात्रा में वृद्धि ही नहीं है। अनिवार्य माने जाने वाली आर्थिक विकास की प्रक्रिया को न्यायसंगत, समतापूर्ण, भागीदारीयुक्त, उत्तरदायी और पारदर्शी होना चाहिए। विकास का अधिकार एक ऐसा अधिकार है जिसे रातों-रात हासिल नहीं किया जा सकता। भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा, रोज़गार और जीवनस्तर के अधिकारों को कृत्रिम रूप से चरणबद्ध तरीक़े से प्राप्त किया जा सकता है।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा सन् 1986 में विकास के अधिकार के घोषणापत्र को अपनाया जाना और सन् 1993 में वियना में मानवाधिकारों के प्रति सभी राष्ट्रों की पूर्ण सहमति एक महान उपलब्धि कही जा सकती है। इस प्रकार विकास का अधिकार मानव विकास की एक नयी योजना है। मानव विकास का अर्थ है स्वतंत्रता का विस्तार और लोगों का अपनी इच्छानुसार जीवन जीने का अधिकार तथा उनके उपयोग के मार्ग में आने वाली बाधाओं जैसे– भूख, कुपोषण, बीमारी, निरक्षरता और आर्थिक असुरक्षा को दूर करना। भारतीय अर्थव्यवस्था ने पिछले पचास वर्षों में सभी क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है।

इस प्रकार, आज के युग में सामाजिक न्याय को हासिल करने की कोशिश ज़रूरी हो गई है। सरकारों के लिए जहां आत्म-हानि के बिना काम करना अथवा नागरिकों को उनके मौलिक अधिकारों से वंचित करना दिनोंदिन कठिन होता जा रहा है वहीं, सामाजिक-आर्थिक संरचना कुछ इस तरह गहरे बैठकर जड़ें जमाए हुए है कि न्यायसंगत और समतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था को कायम करना एक भारी चुनौती सिद्ध हो रही है। मोटे तौर पर देखा जाए तो सामाजिक न्याय की अवधारणा इस विचार से उद्भूत होती है कि सभी व्यक्तियों को आर्थिक असमानता, वर्ग, लिंग, जाति, प्रजाति, धर्म, आयु, विकलांगता अथवा स्वास्थ्य जैसे सामाजिक भेदभाव की परवाह किए बगैर अपने कतिपय बुनियादी अधिकारों और आवश्यकताओं का उपभोग करने का पूर्ण अधिकार है।

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय अर्थव्यवस्था में जहां नवीन प्रौद्योगिकी तथा कृषि के आधुनिकीकरण और तेज़ी से हो रहे औद्योगीकरण के कारण असाधारण प्रगति हुई है, वहीं यह प्रश्न भी उठता है कि क्या मानव विकास के संदर्भ में भी हमने उतनी प्रगति की है। मानव विकास से मेरा तात्पर्य बिना किसी अपवाद के सभी लोगों की स्वतंत्रता के दायरे का विस्तार और गहराई प्रदान करने तथा सम्मानजनक और सार्थक अस्तित्व के उनके अधिकार को गारंटी प्रदान करने से है। हमें अपने आप से यह पूछना होगा कि क्या हमारे देशवासी बिना किसी भेदभाव, दमन, शोषण, भूख और ग़रीबी के स्वतंत्रतापूर्वक अपना जीवन जी रहे हैं? क्या समान अधिकार प्राप्त नागरिक और स्वंतत्रचेता व्यक्ति के रूप में सार्वजनिक जीवन में भाग ले रहे हैं? और, क्या लोगों के कुछ वर्ग और समुदाय अभी भी सामाजिक वंचना और वर्जना का सामना कर रहे हैं?

मानव विकास के सूचकांकों के संदर्भ में दक्षिण एशिया का रिकॉर्ड बहुत निराशाजनक रहा है। सहस्राब्दि विकास लक्ष्य रिपोर्ट, 2008 का अनुमान है कि खाद्यान की बढ़ती क़ीमतों के कारण 10 करोड़ और लोग घोर ग़रीबी के दायरे में शामिल हो जाएंगे। इनमें से अधिकतर मध्य अफ्रीकी और दक्षिणी एशियाई देशों के लोग होंगे। ये वे क्षेत्र हैं जहां के वाशिंदे बड़ी संख्या में पहले से ही घोर ग़रीबी में जीवन जी रहे हैं। वैश्विक भूख सूचकांक (जीएसआई) रिपोर्ट, 2008 के अनुसार मध्य अफ्रीकी और दक्षिण एशियाई देश भूख सूचकांक के मामले में सबसे आगे हैं जिसके कारण इन क्षेत्रों में भूख और ग़रीबी की स्थिति अत्यंत चिंताजनक है। ऑक्सफोर्ड निर्धनता और मानव विकास पहल ने यूएनडीपी (संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम) के साथ संयुक्त रूप से बहुआयामी निर्धनता सूचकांक (एमपीआई) के बारे में जो अध्ययन किया है उससे उपर्युक्त तथ्य की और पुष्टि होती है। इस अध्ययन के अनुसार बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल सहित आठ राज्यों में कुल मिलाकर जितने ग़रीब निवास करते हैं उनकी संख्या अफ्रीका के 26 सबसे ग़रीब देशों की कुल जनसंख्या से भी अधिक है। राष्ट्रीय

मानव अधिकार आयोग (एनएचआरसी) भी ओडिशा के कोरापुट, बोलंगीर और कालाहांडी ज़िलों से इस वर्ष के प्रारंभ में भूख से मरने वाले लोगों के बारे में मिली ख़बरों पर निकट से निग़ाह रखे हुए है।

इन सब अध्ययनों से जो बात व्यापक रूप से उभरकर सामने आई है वह यह कि मानवाधिकारों को चोट पहुंचाने वाले सामाजिक लक्षणों में सबसे महत्वपूर्ण है निर्धनता। इसके अलावा भी कई अन्य सामाजिक और आर्थिक असमानताएं हैं जिनके कारण लोग अपने मौलिक अधिकारों का उपभोग नहीं कर पाते और इस कारण वे पूर्ण एवं सार्थक जीवन नहीं जी पाते। ये असमानताएं प्राय: उस स्थिति में परिलक्षित होती हैं जिसे प्रसिद्ध राजनीतिशास्त्री योहान गाल्टुंग संरचनात्मक हिंसा कहते हैं। यह हिंसा का वह रूप होता है जिसमें कतिपय जमी हुई सामाजिक संरचनाएं और संस्थाएं बड़े सधे हुए तरीक़े से लोगों को अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करने से रोकती हैं। संस्थागत जातिवाद, लिंगवाद और अभिजात्यवाद संरचनात्मक हिंसा के विभिन्न रूपों के कुछ उदाहरण मात्र हैं।

इन चुनौतियों के बावजूद एक उत्साहवर्धक बात जो साथ-साथ चल रही है वह यह कि अधिकारों की बढ़ती संख्या को मान्य करने की प्रवृत्ति भी बढ़ती जा रही है। पूर्ण और सम्मानित जीवन के लिए इन अधिकारों को अनिवार्य माना जा रहा है। सामाजिक न्याय के दायरे का धीरे-धीरे विस्तार होता जा रहा है और अब उसमें मूल निवासियों के स्वास्थ्य, शिक्षा, भोजन और वनाधिकार जैसे अन्य अधिकारों को भी शामिल कर लिया गया है। ये अधिकार ऐतिहासिक रूप से समाज के हाशिये पर रहे वंचित समुदायों के लाभार्थ सार्थक कार्रवाई में नीतिगत हस्तक्षेप के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा लिंग भेद, युवा और विकलांगों के मुद्दों को भी सामाजिक न्याय के नज़रिये से देखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है ताकि आवश्यकतानुसार उसमें नीतिगत हस्तक्षेप किया जा सके।

यूं तो ऐतिहासिक रूप से प्राय: सभी धर्मों में व्यक्तियों की समानता और न्यायपूर्ण व्यवहार का उपदेश दिया गया है, परंतु यह सार्वभौम मानवाधिकार घोषणापत्र (यूडीएचआर) ही है जिसमें पहली बार सभी राष्ट्रों में मानवाधिकारों के संरक्षण को वैधानिक गारंटी देने के महत्व को औपचारिक रूप से स्वीकार किया गया है। यूडीएचआर के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार संधि और अंतरराष्ट्रीय नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार संधि में प्रगतिशील प्रावधान किए गए हैं जिनका उद्देश्य विश्वभर में सामाजिक न्याय का सवंर्धन करना है।

पिछले कुछ दशकों का हाल देश में ऐसा रहा है कि इतिहासकार इसे स्वतंत्रता के बाद का सबसे बड़ा भ्रष्टाचार और घूसखोरी का युग कहने को बाध्य हो जाएंगे। अभूतपूर्व भ्रष्टाचार और घोटालों में शीर्ष पदों पर विराजमान लोक सेवकों का मुब्तिला होना और विदेशी बैंकों में भारी मात्रा में ज़मा काले धन की मीडिया की ख़बरों से यह वर्गीकरण उचित ही कहा जा सकता है। सामाजिक रूप से आम आदमी के अधिकारों को चोट पहुंची है। हाल ही में राज्यों के मुख्य सचिवों को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री का भ्रष्टाचार के विरुद्ध अभियान तेज़ करने का आह्वान और पिछले काफी लंबे अरसे से प्रशासन और नैतिकता में आई गिरावट के बारे में केंद्रीय गृहमंत्री की टिप्पणी, दोनों को आम आदमी की चिंता और कष्ट की अभिव्यक्ति के रूप में देखा जा सकता है। निस्संदेह, मानवाधिकारों के हनन में जातिवादी, धार्मिक और राजनीतिक तनावों का भी पर्याप्त योगदान रहा है जो नागर समाज की कमज़ोर संस्थाओं के कारण बढ़ता जा रहा है। समय की मांग है कि देश में संविधान प्रदत्त सभी मानवाधिकारों के सम्मान, संवर्धन और संरक्षण को सुनिश्चित करने का वातावरण तैयार करने के लिए एक ऐसी साफ-सुथरी व्यवस्था क़ायम की जिसमें सब की हिस्सेदारी हो।

अपनी 16 वर्ष की छोटी-सी यात्रा में एचएचआरसी देशभर में मानवाधिकारों के हनन के प्रयासों को नियंत्रित करने की लड़ाई में अथक रूप से अगुवाई कर रहा है, साथ ही सामाजिक और आर्थिक न्याय हासिल करने के लिए उपयुक्त माहौल तैयार करने में जुटा हुआ है। मानवाधिकारों के बेहतर रूप से संरक्षण और संवर्धन के प्रयास के सिलसिले में इसने अनुभव किया है कि आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों से जुड़े मानवाधिकारों के मामलों में विफ़लताओं का दायरा पूरे देश में फैला हुआ है और इन निषेधों के कारण तमाम लोगों का अस्तित्व ही हाशिये पर आ गया है। मानवाधिकारों के संरक्षण और संवर्धन के लिए संघर्ष करने के वास्ते, समय रहते उन मामलों को समाप्त करने की आवश्यकता है जो समाज को बांटते हैं और जिनसे कुछ लोगों को दूसरों से अधिक अवसर और अधिकार प्राप्त होते हैं।

अत: सामाजिक और शैक्षणिक सशक्तीकरण, श्रम कल्याण, पूरक और अनुवर्ती शिक्षा, शारीरिक और मानसिक रूप से पीड़ित व्यक्तियों के पुनर्वास, संपोषणीय आजीविका और महिला सशक्तीकरण जैसे विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से समाज के कमज़ोर वर्गों के अधिकारों के संरक्षण और संवर्धन के लिए सक्रिय रूप से प्रयास करते रहना अनिवार्य है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग जैसी राष्ट्रीय संस्थाओं के माध्यम से भारत सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सहित सभी क्षेत्रों में मानवाधिकारों के संरक्षण और संवर्धन में उल्लेखनीय भूमिका निभा रहा है। राष्ट्र स्तरीय मानवाधिकार संस्थाएं तो अधिक-से-अधिक समाज के सबसे वंचित और कमज़ोर लोगों के मानवाधिकारों के संरक्षण और संवर्धन के प्रयासों में उत्प्रेरक का कार्य भर कर सकती हैं। इस महान कार्य में नागर समाज के लोगों और सरकार का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। मेरा विचार है कि इस संबंध में वैश्विक विचार और स्थानीय व्यवहार का दृष्टिकोण अपनाना उचित होगा। जब सब मिलकर अपने प्रयासों और शक्तियों को लोगों के साथ जोड़ने और समर्थ बनाने में लगाएंगे तभी हम वह परिवर्तन ला सकेंगे जिसे महात्मा गांधी देखने की तमन्ना रखते थे।

आए, हम एक नया भारत, सामाजिक न्याय पर आधारित एक महान भारत के निर्माण में महात्मा गांधी जैसे महापुरुषों के जीवन से प्रेरणा लें। ❑

(लेखक भारत के पूर्व प्रधान न्यायाधीश एवं संप्रति राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष हैं।

ई-मेल : chairnhrc@nic.in)

आदिवासियों की उपेक्षा और अधिकार
सक्रिय और समेकित पहल ज़रूरी

● एन.सी. सक्सेना

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि भारत का मध्य क्षेत्र संसाधन संपन्न होने के बावजूद सर्वाधिक निर्धन लोगों का आवास बना हुआ है। इन लोगों का सामाजिक और आर्थिक विकास उस सीमा तक नहीं हो सका है जितना कि देश के अन्य क्षेत्रों का हुआ है। अनेक ऐसे भी उदाहरण हैं जिनसे आभास होता है कि विकास के लिए जो विस्थापन होता है उससे इन क्षेत्रों को हानि ही पहुंची है। नीतिगत दृष्टिकोण से यह समझना महत्वपूर्ण है कि आदिवासी समुदाय केवल इसी कारण से कमज़ोर नहीं हैं कि आमजनों की तुलना में वे संपत्तिविहीन और अशिक्षित हैं बल्कि उनकी संवेदनशीलता अथवा कमज़ोरी मुख्यधारा की अर्थव्यवस्था, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रणाली के साथ उनके बलात एकीकरण के परिणामों से सामंजस्य न बिठा पाने की अक्षमता के कारण ही उपजती है। इनकी यह सापेक्ष निस्संगता ऐतिहासिक रूप से प्रकृत्ति-दत्त है। स्वातंत्र्योत्तर नियोजित विकास की आवश्यकताओं के फलस्वरूप आदिवासी क्षेत्रों में अनेक बांध और सड़कें बनीं, उद्योग लगे और खनन प्रारंभ हुआ। इसी के साथ इन सबसे जुड़ी विस्थापन की प्रक्रिया शुरू हुई। यह शाब्दिक और लाक्षणिक दोनों प्रकार से हुई क्योंकि विकास और विस्थापन की इस गहमा-गहमी में मूल आदिवासी अपनी जड़ों से कट गया। आदिवासी संस्थाएं टूट कर बिखरने लगीं और उनका अस्तित्व असहज हो उठा। उनकी पारंपरिक संस्थाओं और प्रथाओं को बाज़ार अथवा औपचारिक सरकारी संस्थाओं के लिए मैदान छोड़ना पड़ा। आदिवासी न्याय-व्यवस्था के मामले में यह विस्थापन विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा। विकास कार्यों के फलस्वरूप आदिवासी क्षेत्रों में जो तमाम बाहरी लोग आए वे मूल निवासियों की तुलना में बेहतर रूप से सुसज्जित थे। आदिवासियों को लगा कि वे इससे अलाभकर स्थिति में आ गए हैं। उनके जीवनयापन का आधार पहले से ही भंगुर और सामाजिक-आर्थिक रूप से क्षीण था। नयी परिस्थितियां उनके लिए और भी विनाशकारी सिद्ध हुईं। आजीविका का बड़े पैमाने पर ह्रास हुआ। भूमि-विस्थापन हुआ और आदिवासी अपने वंशानुगत समाज से विलग हो गए।

भारत के आदिवासी जहां जोख़िमभरे अंदाज़ में, और कभी-कभी निराशापूर्वक, इन त्रासद परिणामों से जूझ रहे हैं, वहीं सरकारी कार्यक्रमों का परास उनके दर्द को दूर करने में कोई खास योगदान नहीं कर सका है। ये कार्यक्रम आदिवासियों की कंगाली, शोषण और बिखराव को दूर करने की दिशा में ज्यादा आगे नहीं बढ़ सके हैं। आदिवासी समुदायों में इसको लेकर प्राय: आक्रोश और हठ दिखाई देता है तो कभी उसे लेकर पारंपरिक, सामाजिक और नैतिक मूल्यों के अभाव का आभास होता है। इसका कारण है कि निम्नलिखित चिरंतन समस्या कुल मिलाकर अभी भी अपेक्षित ही हैं :

- भूमि विस्थापन (स्वामित्व परिवर्तन)
- ऋण ग्रस्तता
- वनों के साथ संबंध, खनिज एवं वन संपदा (एमएफपी) पर सरकार का एकाधिकार और वनाधिकार अधिनियम, 2006 का क्रियान्वयन नहीं होना
- अनुसूची पांच के क्षेत्रों में पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, (पीइएसए)1996 का अप्रभावी क्रियान्वयन
- विकास परियोजनाओं के फलस्वरूप अनचाहा विस्थापन और समुचित पुनर्वास का अभाव
- पोदू सरीखी स्थान-परिवर्तन-प्रधान कृषि प्रणाली
- सरकारी कार्यक्रमों का ख़राब क्रियान्वयन

उपर्युक्त मुद्दों पर तुरंत ध्यान देने की आवश्यकता है। परंतु वन एवं पर्यावरण, ग्रामीण विकास, पंचायती राज आदि मंत्रालयों के कार्यक्षेत्र में आने वाले इन मुद्दों पर वांछित ध्यान नहीं दिया जा रहा है। जनजातीय कार्य मंत्रालय का वर्तमान दृष्टिकोण केवल अपने बजट और गैर-सरकारी संस्थाओं को अनुदान और छात्रवृत्ति देने जैसी अन्य संबंधित योजनाओं पर ध्यान केंद्रित करने का रहा है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि जनजातीय कार्य मंत्रालय उन मंत्रालयों पर दवाब बनाने का प्रयास नहीं करता जिनको जनजातीय समुदायों को बुनियादी न्याय और विकास का लाभ दिलाने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। जनजातीय कार्य मंत्रालय इस पर भी नज़र नहीं रखता कि शिक्षा, स्वास्थ्य अथवा पोषण जैसी बुनियादी सेवाएं आदिवासियों के झोपड़ों तक पहुंच भी रही हैं अथवा नहीं।

प्रस्तुत आलेख में यह बताया गया है

कि जनजातीय कार्य मंत्रालय और राज्यों के जनजातीय विभागों के कामकाज की प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता है। संकीर्ण विभागीय योजनाओं के माध्यम से केवल अपने बजट को ख़र्च करने वाले दृष्टिकोण से हटकर उन्हें अन्य संबंधित मंत्रालयों/विभागों से ज्ञान आधारित पैरवी करनी होगी। जनजातीय कार्य मंत्रालय को शासन प्रणाली की उन खामियों को सामने लाना चाहिए जिनके कारण वे निर्धन आदिवासियों को बुनियादी सेवाएं सुलभ कराने में विफल रहती हैं और संबंधित मंत्रालयों और राज्य सरकारों पर दवाब डालना चाहिए ताकि आदिवासी क्षेत्रों में बेहतर नीतियां लागू की जा सकें और उन पर सही ढंग से अमल किया जा सके।

दूसरी ओर, जनजातीय मंत्रालय अपनी आवंटित सीमित बजट राशि को भी व्यय नहीं कर पा रहा है। वर्ष 2006-07 से लेकर वर्ष 2010-11 तक के बजट अनुमान, संशोधित अनुमान और वास्तविक योजना व्यय का विवरण तालिका-1 में दिया गया है।

पिछले पांच वर्षों के दौरान, विशेषकर वर्ष 2009-10 में मंत्रालय को काफी राशि वापस करनी पड़ी है। चूंकि वर्ष 2009-10 में मंत्रालय आवंटित राशि को ठीक से ख़र्च नहीं कर सका, इसलिए वर्ष 2010-11 की बजटीय राशि में केवल प्रतीकात्मक वृद्धि ही की गई। मंत्रालय ने राशि अभ्यर्पण के जो कारण बताए हैं उनमें कार्यक्रम के दिशानिर्देशों के अनुसार, राज्य सरकारों से संपूर्ण प्रस्तावों का पर्याप्त संख्या में प्राप्त न होना, राज्य सरकारों से उपयोग प्रमाणपत्र प्राप्त न होना और भौतिक प्रगति का अभाव, रिक्त पदों को न भरा जाना, मितव्ययिता उपायों, आपूर्तिकर्ताओं से बिल प्राप्त न होना आदि प्रमुख हैं। बजट को समय पर व्यय करने के लिए जनजातीय कार्य मंत्रालय को अपनी निगरानी व्यवस्था एवं क्षमता को सुधारना होगा।

दयनीय प्रशासनिक व्यवस्था

धनराशि के खराब उपयोग के अलावा, आदिवासियों को प्रशासनिक व्यवस्था की दयनीय गुणवत्ता के कारण भी नुक़सान उठाना पड़ा है। वैसे तो पूरे देश में कार्यक्रमों के निष्पादन का स्तर गिरा है, परंतु आदिवासी क्षेत्रों में ऐसा अधिक हुआ है। सरकारी कर्मचारी वहां काम करने को तैयार नहीं होते और प्राय: अपने कार्य से अनुपस्थित रहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार कर्मचारियों के राजनीतिक दवाब के समक्ष झुक गई है, क्योंकि उनके अनेक पद आदिवासी क्षेत्रों में गैर-आदिवासी क्षेत्रों का स्थानांतरित कर दिए गए हैं। जहां पर वे बिना कोई कार्य किए वेतन प्राप्त कर सकते हैं। यह सोच कर तरस आता है कि आदिवासी क्षेत्रों में ढेरों पद रिक्त पड़े हैं जबकि देश में शिक्षित बेरोज़गारी बढ़ रही है। झारखंड के बारे में यूनिसेफ के एक अध्ययन से पता चला है कि एनआरएचएम (राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन) के क्रियान्वयन में राज्य को जिस सबसे बड़ी समस्या का सामना करना पड़ रहा है वह राज्य में कुशल जनशक्ति का अभाव है। जिन दो ज़िलों का सर्वेक्षण किया गया उनमें से साहिबगंज में 50 प्रतिशत से भी अधिक पद रिक्त थे, जबकि बेहतर आधारभूत संरचना वाले पूर्वी सिंहभूम जिले में लगभग 54 प्रतिशत पद ही भरे हुए थे। इस अध्ययन में अल्प एवं अप्रभावी उपयोग के जो अन्य कारण पाए गए वह कर्मचारियों में क्रियान्वयन के नियमों के ज्ञान और निगरानी प्रणाली जैसे प्रणालीगत नियंत्रणों के अभाव के कारण अधिक प्रतीत होते हैं।

जनजातीय कार्य मंत्रालय को वनाधिकार अधिनियम (एफआरए) के क्रियान्वयन के निरीक्षण का कार्य सौंपा गया था, परंतु हाल के एक अध्ययन से पता चला है कि मंत्रालय इस कानून का निष्ठापूर्वक क्रियान्वयन करवाने में विफल रहा। (इस अध्ययन की रिपोर्ट www.tracommittee.iefre.org पर उपलब्ध है। वनाधिकार कानून का मुख्य उद्देश्य सामुदायिक सहभागिता और प्रबंधन को बढ़ावा देना होने के बावजूद अध्ययन दर्शाता है कि लघु वनोपज (एमएफपी) जैसी वस्तुओं पर सामुदायिक अधिकार को केवल इने-गिने मामलों में ही मान्यता दी गई है।

अन्य आदिवासी मुद्दों पर भी मंत्रालय का रिकॉर्ड निराशाजनक रहा है। मंत्रालय अभी तक राष्ट्रीय जनजातीय नीति को अंतिम रूप नहीं दे सका है। हालांकि इसके प्रारूप की घोषणा क़रीब 6 वर्ष पहले बड़ी धूमधाम से की गई थी। अनिच्छा से होने वाले विस्थापन से संबंधित कानून के बारे में वर्ष 1998 से चर्चा हो रही है, परंतु यह अभी तक नहीं बन सका। यद्यपि यह एक स्थापित तत्य है कि परियोजनाओं के कारण अनिच्छा से घर-द्वार छोड़ने पर आदिवासियों को सबसे अधिक कष्ट होता है। जनजातीय कार्य मंत्रालय राज्यों की 'पेसा' (पीईएसए) के अनुरूप अपना कानून बदलने के लिए तैयार करने में कोई रुचि नहीं लेता। वनों पर निर्भर गांवों में सरकारी कामकाज़ की दयनीय स्थिति के बारे में, विशेषकर कर्मचारियों के खाली पड़े पदों और जिनकी तैनाती है उनकी अनुपस्थिति के बारे में, मंत्रालय की ओर से कोई श्वेत-पत्र नहीं जारी हुआ है। मंत्रालय की उसके पैरोकार संगठनों के साथ कोई सार्थक सहभागिता नहीं है। ऐसा नहीं होने के कारण आदिवासी हितों की उपेक्षा करने वाले अन्य मंत्रालयों पर दवाब डालने के लिए विश्वसनीय और प्रामाणिक रिपोर्ट नहीं प्राप्त हो पाती।

व्यवस्थागत परिवर्तन की आवश्यकता

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि जनजातीय मंत्रालय इस तर्क के आधार पर आदिवासियों की महत्वपूर्ण समस्याओं की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं देता कि भूमि का स्वामित्व परिवर्तन, विस्थापन और 'पेसा' जैसे विषय उसके कार्यक्षेत्र में नहीं आते। इसके बावजूद, संबंधित मंत्रालयों के पीछे लगकर इन मुद्दों के समाधान के लिए जनजातीय मंत्रालय को और अधिक सक्रिय भूमिका निभानी

तालिका-1

जनजातीय कार्य मंत्रालय के लिए बजट प्रावधान और योजना परिव्यय (करोड़ रुपये में)

वर्ष	बजट अनुमान	संशोधित अनुमान	व्यय	बजट अनुमान की तुलना में व्यय का प्रतिशत
2006-07	1656.90	1652.68	1647.37	99.42
2008-08	1791.71	1719.71	1524.32	88.63
2008-09	2121.00	1970.00	1805.91	85.17
2009-10	3205.50	2000.00	1996.79	62.35
2010-11	32.06.50	–	–	–

चाहिए, क्योंकि अन्य मंत्रालयों में इन विषयों को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। वे प्राय: यह बहाना करते हैं कि उनके पास करने को अन्य अनेक 'बड़े' और 'व्यापक' विषय हैं। जनजातीय कार्य मंत्रालय कम-से-कम आदिवासी क्षेत्रों की दयनीय स्थिति को उज़ागर करने के लिए एक निगरानी तंत्र की स्थापना तो कर ही सकता है, जिनसे अन्य संबंधित मंत्रालयों और राज्यों पर अपनी नीतियों और उनके क्रियान्वयन को सुधारने के लिए नैतिक दवाब बनाया जा सके। अन्य मंत्रालय, जनजातीय कार्य मंत्रालय को तभी गंभीरता से लेंगे, जब वह प्रमाण के साथ वे कारण सामने लाएगा, जिनसे विश्वास हो सके कि वन क्षेत्रों में काम ठीक से क्यों नहीं हो पा रहा है। प्रस्तुत आलेख में दिए गए सुझावों के क्रियान्वयन की समीक्षा के लिए सरकार भी एक मंत्री-समूह का गठन कर सकती है।

वंचित वर्गों के कल्याण के लिए जब किसी नये मंत्रालय का गठन किया जाता है, तो यह अपेक्षा की जाती है कि वह उनकी समस्याओं पर समग्र दृष्टिकोण अपनाएगा और उन सभी अन्य मंत्रालयों की गतिविधियों से समन्वय स्थापित करेगा जिनके कार्यकलाप उसके विषयों को प्रमाणित करते हैं। इससे एक ऐसी व्यवस्था विकसित होगी जिससे भारत सरकार को तत्काल बताया जा सके कि आदिवासियों के साथ न्याय क्यों नहीं हो पा रहा है। लेकिन इसके विपरीत यह देखा गया है कि नया मंत्रालय अपने उत्तरदायित्व का यथासंभव न्यूनतम पालन करता है और अपने को केवल ऐसी योजनाओं तक सीमित कर लेता है जो अन्य विद्यमान मंत्रालयों के कार्यक्षेत्र से पूर्णतया परे हों। छात्रवृत्तियों और गैर-सरकारी संगठनों को अनुदान देना इसी तरह के कार्यों के उदाहरण हैं। यह शुतुरमुर्ग जैसा नज़रिया उस उद्देश्य को ही नष्ट कर देता है जिसके लिए मंत्रालय का गठन किया गया है।

यह दुख की बात है कि जनजातीय कार्य मंत्रालय गैर-सरकारी संगठनों के माध्यम से अपनी बजट राशि के व्यय के बारे में ही अधिक चिंतित रहता है। आदिवासियों पर अन्य मंत्रालयों की नीतियों और कार्यक्रमों का क्या प्रभाव पड़ता है उससे उसका कोई सरोकार नहीं रहता। गैर सरकारी संगठनों पर अधिक निर्भरता से पक्षपात और प्रश्रय के अवसर पैदा होते हैं। कुछ तिकड़मी गैर सरकारी संगठन इस स्थिति का लाभ उठाते हुए सारी वाहवाही स्वयं लूट लेते हैं।

वे विभागीय अधिकारियों का समय भी अधिक खाते हैं, जिससे उनके पास आदिवासियों की व्यथा और कष्ट दूर करने के वास्तविक कार्यों के लिए बहुत कम समय बचता है। इस दृष्टिकोण से आदिवासी समस्याओं की उपेक्षा को बढ़ावा मिलता है। इससे विस्थापन जैसी गैर मौद्रिक नीतियों की भूमिका और लोगों के जीवन पर उनके प्रभाव पर भी ठीक से ध्यान नहीं जा पाता है।

उदाहरणार्थ, राज्यों में लघु वनोपज की नीतियां प्राय: राजस्व में वृद्धि की इच्छा से निर्देशित होती हैं, न कि उनका संग्रह करने वालों के कल्याण की इच्छा से, जो आमतौर पर महिलाएं होती हैं। ओडिशा के राजस्व के अध्ययन से पता चलता है कि वर्ष 1989 से 2001 की अवधि में राज्य सरकार को केंदू (तेंदू) पत्ते से 7.52 अरब रुपये का राजस्व प्राप्त हुआ, जबकि इसी अवधि में केंदू पत्ता संग्राहकों को कुल 3.8 अरब रुपये की आय हुई। केंदू पत्ते पर रायल्टी की उच्च दर की तुलना संगठित श्रम क्षेत्र वाले अन्य प्रमुख खनिजों से प्राप्त रायल्टी से करने की आवश्यकता है। केंदू पत्ते से जहां 12,000 रुपये प्रतिटन की भारी रायल्टी प्राप्त होती है, वहीं बॉक्साइट जैसे खजिन से कुल 30 रुपये प्रतिटन की रायल्टी प्राप्त होती है।

योजना आयोग भी आदिवासियों पर मौजूदा नीतियों के प्रभाव नियमित नहीं करता और न ही उनकी खामियों के लिए संबंधित मंत्रालयों की खिंचाई करता है। ऐसा लगता है कि भारत सरकार केवल बजट में वित्तीय प्रावधान करने भर से ही संतुष्ट हो जाती है। इस बात की चिंता इसे नहीं दिखाई देती कि वंचित लोगों पर इन नीतियों (अथवा उनके अभाव) का क्या प्रभाव होता है। तमाम दावों के बावजूद नीतियों और बजटीय प्रावधानों का अभी तक समेकन नहीं हो सका है। नीतियों अथवा कानूनों में परिवर्तन को विकास प्रक्रिया के अभिन्न अंग के रूप में नहीं देखा जाता, क्योंकि वित्तीय निहितार्थ पर उनका कोई सीधा प्रभाव नहीं पड़ता। इस अलगाव का एक कारण यह भी है कि भारत में विकास और नियोजन को केवल धनराशि के व्यय के रूप में ही देखा जाता है। इस तरह की धारणा है कि नियोजन का अर्थ होता है व्यय और इसी से विकास संभव हो सकेगा। दुर्भाग्यवश, भारतीय नियोजन को अभी भी यह समझना बाकी है कि नियोजन और बजट बनाने में अंतर होता है। इसी सोच में बदलाव की आवश्यकता है। बजट राशि को व्यय करने के अलावा, हमें संस्थाओं, कानूनों और नीतियों जैसे गैर-मौद्रिक विषयों को भी समान महत्व देना होगा। ❑

(लेखक भारत सरकार की राष्ट्रीय सलाहकार परिषद के सदस्य हैं।

ई-मेल : nareshsaxena@gmail.com, nc.saxena@nac.nic.in)

अपने लेख हमें ई-मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई-मेल भी कर सकते हैं। ई-मेल करने इसके लिए कृतिदेव फांट इस्तेमाल करें और वर्ड ओपन फाईल exeed.yojana@gmail.com अथवा yojanahindi@gmail.com पर भेजें। एक से अधिक लेखकों के नाम केवल विशेष शोध लेखों पर ही दें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार अथवा फोन न करें। विशेष अवसरों के लिए लेख तीन माह पूर्व प्राप्त हो जाने चाहिए। रचनाओं के साथ यथासंभव प्रासंगिक चित्र भी भेजें। डाक से भेजे जाने वाले लेखों की एक प्रति सीडी में भी भेजें। वापसी के लिए कृपया टिकट लगा और पता लिखा लिफ़ाफ़ा संलग्न करें।

– वरिष्ठ संपादक

"हमारा मिशन/उद्देश्य - हिन्दी माध्यम में प्रतिशत चयन दर बढ़े।"

(हिन्दी माध्यम का सर्वोत्तम संस्थान)

R रूद्र सिविल सर्विसेज

(सामान्य अध्ययन, अभिरुचि परीक्षण, निबंध, भाषा-ज्ञान (सामान्य हिन्दी एवं अंग्रेजी), साक्षात्कार

भारत की इस सबसे प्रतिष्ठित व गतिशील सेवा में प्रत्येक स्नातक भागीदारी ही नहीं, अंतिम तौर पर सफल भी होना चाहता है। सफलता के कुछ मानक हैं- उत्कृष्ट् श्रम शक्ति, ऊर्जस्विता, समय-प्रबंधन, ज्ञान-कौशल व अभिव्यक्ति- यहां पर हम अतुलनीय हैं, अध्ययन के उपरोक्त संदर्भ ज्ञान-अभिव्यक्ति-संवाद से जुड़े पहलू हैं- इस जोड़ के मर्म को समझने की आज महती आवश्यकता है।

स्तरीय व मौलिक ज्ञान, बेहतर अभिव्यक्ति, उत्कृष्ट लेखन क्षमता, उच्च आत्म विश्वास तथा हिन्दी से जुड़े हीन भाव व माध्यम की भ्रांति दूर करने में हम अनोखे व अद्वितीय होंगे।

हम आपके साथ मिलकर इतिहास रच सकते है।

हमारे कक्षा-कार्यक्रम :

क्रम	परीक्षा का नाम व विषय	कक्षा प्रारम्भ होने की तिथि व समय
1.	सामान्य अध्ययन व निबंध (मुख्य परीक्षा-2011)	23 जून, सायं 5 व 7:30 बजे कुल समय- लगभग 4 माह व 1 माह
2.	आधारिक कक्षा कार्यक्रम (फाउंडेशन कोर्स) सामान्य अध्ययन, अभिरूचि परीक्षण, निबंध, भाषा-ज्ञान (सामान्य हिन्दी व अंग्रेजी), लेखन क्षमता व अभिव्यक्ति विकास, साक्षात्कार	14 जुलाई, 8 बजे प्रातः कुल समय- 8-10 माह
3.	सामान्य अध्ययन व अभिरूचि परीक्षण (प्रा. परीक्षा-2012)	21 जुलाई, 11 बजे दिन कुल समय- 6½ माह
4.	अभिरूचि परीक्षण (प्रा. परीक्षा-2012)	28 जुलाई, सायं 3 बजे, कुल समय- 3 माह
5.	सामान्य अध्ययन, निबन्ध (मुख्य परीक्षा-2012)	27 अक्टूबर, सायं 5 व 7:30 बजे
6.	सामान्य हिन्दी व निबंध (राज्य सिविल सेवाओं के लिए)	जुलाई से हर दूसरे माह प्रथम सप्ताह/2 माह
7.	निबन्ध (सिविल सेवा)	प्रत्येक माह, प्रथम सप्ताह, 1 माह
8.	साक्षात्कार	परीक्षा परिणाम के 5 दिन बाद

इसी के साथ
अनंत शुभकमनाएं
एल.एम. त्रिपाठी
ए.के. गुप्ता

उपलब्ध विषय

लोक प्रशासन
द्वारा
सुशील सर
आप प्रयास आई.ए.एस. स्टडी सर्किल के निदेशक तथा लोक प्रशासन के लब्धप्रतिष्ठ विशेषज्ञ है।

नामांकन जारी
प्रारम्भिक परीक्षा के लिए टेस्ट सीरीज, 20 अप्रैल-2011 से शुरू

निदेशक
डॉ. सी.वी. सिंह
रूद्र सिविल सर्विसेज

202, विराट भवन, एम.टी.एन.एल. बिल्डिंग, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-09
09650289809, 09899038193, 09412879525

YH-4/11/7

भ्रष्टाचारमुक्त शासन व्यवस्था का अधिकार

● अरविंद केजरीवाल

यदि हम भ्रष्टाचार से निपटने के प्रति गंभीर हैं, तो हमें हमारी भ्रष्टाचार विरोधी व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करना होगा। सरकार को चाहिए कि वह जन लोकपाल विधेयक को स्वीकार कर देश को भ्रष्टाचार से मुक्ति दिलाए

ऐसा क्यों होता है कि सार्वजनिक जीवन में भ्रष्ट आचरण के अनेक प्रमाणों के बावजूद बड़े लोगों को शायद ही कभी जेल जाना पड़ता है? ऐसा इसलिए कि हमारे भ्रष्टाचार विरोधी कानून और उनको अमल में लाने वाली एजेंसियां ऐसी हैं जो कागज़ी कार्रवाई भी ठीक से नहीं कर पातीं। केंद्र में, हमारे पास सीवीसी यानी केंद्रीय सतर्कता आयोग है, जो कहने को तो स्वतंत्र है, परंतु उसकी स्थिति एक परामर्शदात्री संस्था से अधिक की नहीं है। होता यह है कि जब भी किसी वरिष्ठ अधिकारी के विरुद्ध परामर्श दिया जाता है, तो उसे मुश्किल से स्वीकार किया जाता है। एक भूतपूर्व केंद्रीय सतर्कता आयुक्त के अनुसार, अपने कार्यकाल के दौरान जब भी उन्होंने यह महसूस किया कि अमुक अधिकारी को जेल जाना चाहिए था अथवा उसको सेवामुक्त कर दिया जाना चाहिए था, उसे केवल चेतावनी देकर छोड़ दिया गया। केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सीबीआई) भी कहने को तो स्वतंत्र निकाय है, परंतु पूर्णतया सरकारी नियंत्रण में है। कोई भी जांच शुरू करने के पूर्व अथवा किसी अधिकारी या नेता के विरुद्ध मुकदमा चलाने के पूर्व उसे सरकार से अनुमति लेनी होती है और यह इस बात पर निर्भर करती है कि जिसके विरुद्ध जांच या कार्रवाई होनी है, वह किसका समर्थक है। राज्यों के स्तर पर जो भ्रष्टाचार विरोधी व्यवस्था है, वह भी इसी प्रकार से समझौतावादी है। वे या तो पूर्णतया सरकारी नियंत्रण में होती हैं अथवा उनका स्वरूप भी परामर्शदात्री संस्था का ही होता है।

इस प्रकार हमारे भ्रष्टाचार विरोधी कानून अपर्याप्त हैं। आपको यह जानकर दुख होगा कि जब कोई व्यक्ति भ्रष्टाचार का दोषी पाया जाता है, तो सरकार को उसने जो हानि पहुंचाई होती है, उसकी वसूली का कोई प्रावधान नहीं है और न ही भ्रष्ट तरीक़े से अर्जित संपत्ति को ज़ब्त किया जा सकता है। वह ज़ेल से बाहर आकर भ्रष्ट तरीक़े से जमा की गई दौलत का आनंद आराम से उठा सकता है। अत: यदि हम वास्तव में भ्रष्टाचार को समाप्त करने के प्रति गंभीर हैं, तो हमारे भ्रष्टाचार-विरोधी तंत्र में आमूल परिवर्तन करना होगा।

बहुत से लोग पूछते हैं कि ''क्या भारत में बदलाव आ सकता है?'' मेरा विचार है कि भारतीय आमतौर पर ईमानदार, बुद्धिमान और परिश्रमी होते हैं। वे सड़ी-गली व्यवस्था के शिकार हैं। हांगकांग में 1970 के दशक में भ्रष्टाचार आज के भारत के मुक़ाबले कहीं अधिक था। पुलिस और माफिया (संगठित अपराधी गिरोह) के बीच साठ-गांठ बढ़ गई थी और अपराध की दर बढ़ रही थी। लाखों लोग सड़कों पर उतर आए। परिणामस्वरूप, सरकार को भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक स्वतंत्र आयोग (आईसीएसी) का गठन करना पड़ा और उसे पूर्ण शक्तियां दी गईं। आईसीएसी के पहले ही झटके में 180 पुलिस अधिकारियों में से 199 को नौकरी से बर्खास्त कर दिया। इससे नौकरशाही को यह सख्त संदेश गया कि भ्रष्टाचार सहन नहीं किया जाएगा। आज, हांगकांग की शासकीय मशीनरी सबसे ईमानदार प्रणाली मानी जाती है।

यदि भारत में भी इसी प्रकार की भ्रष्टाचार विरोधी संस्था हो तो यहां भी बदलाव आ सकता है।

लोगों के विचार में इतना तीव्र जनाक्रोश किसी भी संवेदनशील सरकार के लिए भ्रष्टाचार विरोधी प्रणालियों में सुधार को आगे बढ़ाने के लिए एक महान राजनीतिक अवसर था। परंतु लगता है कि जनालोचना का सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है, क्योंकि भ्रष्टाचार का विषहर बताए जा रहे लोकपाल विधेयक का

जो प्रारूप सरकार ने तैयार किया है वह समूचे राष्ट्र का अपमान है। यह विधेयक यदि पारित हो गया तो भ्रष्टाचार विरोधी व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के बजाय, आज भ्रष्टाचार विरोधी जो भी तंत्र है, उसे भी कमज़ोर कर देगा। सरकार के प्रस्ताव के बारे में प्रमुख आपत्तियां इस प्रकार हैं :

- लोकपाल को किसी भी मामले में अपने आप न तो कोई कार्रवाई शुरू करने का अधिकार होगा और न ही आम जनता से भ्रष्टाचार की कोई शिकायत प्राप्त करने का अधिकार होगा। लोग अपनी शिकायत लोक सभा के अध्यक्ष और राज्य सभा के सभापति को भेजेंगे। लोक सभा के अध्यक्ष और राज्य सभा के सभापति जो शिकायत लोकपाल को अग्रेषित करेंगे, लोकपाल केवल उसी की छानबीन करेगा। इससे लोकपाल के कामकाज़ पर प्रतिबंध लगा रहेगा और इससे सत्तारूढ़ दल को एक ऐसा औजार मिल जाएगा जिससे वह अपने राजनीतिक विरोधियों की जांच से संबंधित मामलों को ही लोकपाल के पास भिजवाएगा, क्योंकि लोक सभा अध्यक्ष हमेशा ही सत्तारूढ़ दल का ही होता है। सत्तारूढ़ दल इसका इस्तेमाल अपने नेताओं को बचाने के लिए भी कर सकेगा।
- लोकपाल को एक परामर्शदात्री निकाय बनाने का प्रस्ताव है। लोकपाल किसी भी मामले में जांच के बाद अपनी रिपोर्ट सक्षम अधिकारी को देगा। इस रिपोर्ट पर कार्रवाई करने के बारे में निर्णय लेने का अधिकार सक्षम अधिकारी को ही होगा। मंत्रिमंडलीय स्तर के मंत्रियों के बारे में सक्षम अधिकारी प्रधानमंत्री होगा, जबकि प्रधानमंत्री और सांसदों के मामले में सक्षम अधिकारी लोक सभा अथवा राज्य सभा, जिसके सदस्य से संबंधित मामला होगा। गठबंधन सरकारों के इस युग में, जहां सरकारें अपने राजनीतिक सहयोगियों के समर्थन पर निर्भर करती हैं, प्रधानमंत्री के लिए लोकपाल की रिपोर्ट के आधार पर अपने मंत्रिमंडल के सदस्य के विरुद्ध कार्रवाई करना असंभव सा हो जाएगा। यदि लोकपाल प्रधानमंत्री अथवा सत्तारूढ़ दल के किसी सांसद के विरुद्ध कोई रिपोर्ट देता है तो क्या सदन कभी प्रधानमंत्री अथवा सत्तारूढ़ दल के सांसद के खिलाफ़ मुक़दमा चलाने का कोई प्रस्ताव पारित करेगा? स्पष्ट है, कि वे ऐसा कभी नहीं करेंगे।
- विधेयक विधिक रूप से कमज़ोर है। लोकपाल को पुलिस के अधिकार नहीं दिए गए हैं, इसलिए वह प्रथम सूचना रिपोर्ट- एफआईआर, दर्ज़ नहीं कर सकता। इसलिए लोकपाल जो भी पूछताछ करेगा, उसे 'प्रारंभिक पूछताछ' ही समझा जाएगा और यदि लोकपाल की रिपोर्ट स्वीकार भी कर ली जाए, तो न्यायालय में आरोपपत्र कौन दायर करेगा? कौन मुक़दमा चलाएगा? अभियोजन अधिवक्ता की नियुक्ति कौन करेगा? समूचा विधेयक इस संबंध में मौन है।
- विधेयक में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि विधेयक के बाद सीबीआई का क्या होगा? क्या सीबीआई और लोकपाल एक ही मामले की जांच कर सकते हैं, अथवा सीबीआई के पास से राजनीतिज्ञों की जांच करने का अधिकार वापस ले लिया जाएगा। यदि यह बात सही है तो यह विधेयक राजनेताओं की, सीबीआई से आज जो कुछ भी जांच संभव है, उससे भी बचाने का प्रयास है।
- फर्ज़ी और निरर्थक शिकायतों के लिए कड़ी सज़ा का प्रावधान है। यदि कोई शिकायत फर्जी और गलत पाई गई तो लोकपाल को फौरी मुक़दमा चलाकर शिकायतकर्ता को जेल भेजने का अधिकार होगा। परंतु यदि कोई शिकायत सही पाई गई तो लोकपाल को भ्रष्ट नेता को जेल भेजने का अधिकार नहीं होगा। अत: ऐसा लगता है कि विधेयक को भ्रष्टाचार के विरुद्ध लड़ाई छेड़ने वालों को हतोत्साहित करने, डराने और धमकाने के लिए बनाया गया है।
- लोकपाल के क्षेत्राधिकार में केवल सांसद, मंत्री और प्रधानमंत्री आएंगे। अधिकारी उसके कार्यक्षेत्र के दायरे में नहीं आएंगे। अधिकारी और नेता भ्रष्टाचार अलग-अलग रहकर नहीं करते। भ्रष्टाचार के किसी भी मामले में दोनों ही शामिल पाए जाते हैं। अत: सरकार के प्रस्ताव के अनुसार, प्रत्येक मामले की जांच सीवीसी और लोकपाल अलग-अलग करेंगे। प्रत्येक मामले में सीवीसी अधिकारियों (नौकरशाही) की भूमिका की जांच करेगी, जबकि लोकपाल राजनीतिज्ञों की भूमिका की जांच करेगा। स्पष्ट है कि मामले से संबंधित दस्तावेज़ किसी एक एजेंसी के पास होंगे और जैसा कि सरकारी कामकाज़ का तरीका है, वह अपने दस्तावेज़ अन्य एजेंसियों को नहीं देगी। यह भी संभव है कि एक ही मामले में दोनों एजेंसियां परस्पर एक-दूसरे की विरोधी रिपोर्ट दें। अत: यह तो किसी भी मामले को ख़त्म करने की पक्क़ी तरक़ीब दिखाई देती है।
- लोकपाल में तीन सदस्य होंगे; तीनों सेवानिवृत्त न्यायाधीश होंगे। इस बात का कोई औचित्य नहीं है कि यह विकल्प केवल न्यायपालिका तक ही सीमित रहे। न्यायाधीशों के लिए सेवानिवृत्ति के बाद इतने अधिक पदों का सृजन, सेवानिवृत्ति से पूर्व उन्हें सरकारी प्रभावों के प्रति संवेदनशील बना सकती है। नौकरशाहों के मामलों में ऐसा प्राय: देखा जाता रहा है। सेवानिवृत्ति के निकट पहुंचे न्यायधीश सेवानिवृत्ति के बाद किसी नियुक्ति की लालसा में अपने अंतिम कुछ वर्षों में सरकार की इच्छानुसार काम कर सकते हैं।
- लोकपाल की चयन समिति में उप-राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, दोनों सदनों के नेता, दोनों सदनों के नेता प्रतिपक्ष, कानूनमंत्री और गृहमंत्री शामिल होंगे। उपराष्ट्रपति को छोड़कर, बाक़ी सभी ऐसे राजनीतिज्ञ होंगे, जिनके भ्रष्टाचार के प्रकरणों की जांच लोकपाल को ही करना पड़ सकता है। अत: यहां सीधा-सीधा हितों का टकराव होने की संभावना है। इसके अतिरिक्त, चयन समिति में अधिकांश सदस्य सत्तारूढ़ दल के ही होंगे और वही अंतिम रूप से सदस्यों का चयन करेगा। स्पष्ट है कि सत्तारूढ़ दल सख़्त और प्रभावी लोकपाल की नियुक्ती कभी नहीं करेगा।
- लोकपाल को प्रधानमंत्री के विरुद्ध उन मामलों की जांच करने का अधिकार नहीं होगा, जिनका संबंध विदेश, सुरक्षा और

रक्षा मामलों से होगा। इसका अर्थ है कि रक्षा सौदों में भ्रष्टाचार का मामला किसी जांच के दायरे से बाहर ही रहेगा।

ऊपर से देखने पर सरकार का यह विधेयक बेतुका लगता है। इसका आशय राजनीतिज्ञों को किसी भी कार्रवाई से महफ़ूज़ रखना है।

प्रबुद्ध नागरिकों ने इसके विपरीत एक वैकल्पिक जन लोकपाल विधेयक का प्रारूप तैयार किया है। पहला प्रारूप प्रशांत भूषण, न्यायमूर्ति संतोष हेगड़े और इस आलेख के लेखक ने तैयार किया था। विधेयक पर अनेक सार्वजनिक मंचों पर व्यापक बहस हुई है और जन प्रतिक्रिया के आधार पर इसमें सुधार किए गए हैं। इसकी बारीक़ी से जांच-पड़ताल की जा चुकी है और इसका समर्थन किरण बेदी, शांति भूषण और अन्ना हज़ारे जैसे अनेक समाजसेवियों तथा 'नेशनल कैंपेन फॉर पीपुल्स राइट टू इन्फॉर्मेशन' (एनसीपीआरआई) ने भी किया है। विधेयक का समूचा प्रारूप www.indiaagainstcorruption.org पर उपलब्ध है। 'जन लोकायुक्त' के नाम से इसी प्रकार के स्वतंत्र निकाय राज्यों के लिए भी सुझाए गए हैं। कुछ राज्यों में जो लोकायुक्त हैं भी, वे भी केवल परामर्श देने वाले हैं और अप्रभावशाली हैं। प्रस्तावित व्यवस्था, भ्रष्टाचार को रोकने में किस प्रकार मदद करेगी?

वर्तमान प्रणाली

- कोई भी वरिष्ठ अधिकारी, सबूतों के बावजूद कभी भी जेल नहीं जाता, क्योंकि भ्रष्टाचार विरोधी शाखा (एसीबी) और सीबीआई सीधे सरकार के नियंत्रण में होती हैं। किसी भी प्रकरण में जांच अथवा कार्रवाई शुरू करने के पूर्व उन्हें उन्हीं हुक्मरानों से मंजूरी लेनी पड़ती है, जिनके विरुद्ध जांच की जानी है।
- किसी भी भ्रष्ट अधिकारी को नौकरी से बर्खास्त नहीं किया जाता, क्योंकि भ्रष्ट अधिकारियों को बर्खास्त करने का काम जिस संस्था- सीवीसी (केंद्रीय सतर्कता आयोग) को सौंपा गया है, वह केवल परामर्शदात्री संस्था है। जब भी वह किसी वरिष्ठ भ्रष्ट अधिकारी को बर्खास्त करने का सुझाव देती है, उस पर अमल नहीं किया जाता।
- भ्रष्ट न्यायाधीशों के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं होती क्योंकि भ्रष्ट न्यायाधीशों के खिलाफ़ एफआईआर दर्ज़ कराने के लिए भारत के प्रधान न्यायाधीश से मंजूरी लेना ज़रूरी है।
- लोग भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करते हैं, परंतु उनकी शिकायतों पर कोई कार्रवाई नहीं होती। लोग कहां जाएं?
- सीबीआई और सतर्कता विभागों में पारदर्शिता का अभाव है। उनका काम करने का तरीक़ा इतना गोपनीय होता है कि उससे इन एजेंसियों में ही भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है।
- भ्रष्टाचार विरोधी संस्थाओं के शीर्ष पदों पर कमज़ोर और भ्रष्ट लोगों को नियुक्त किया जाता है।
- नागरिकों को सरकारी कार्यालयों में परेशानियों का सामना करना पड़ता है। कई बार उन्हें रिश्वत देने के लिए बाध्य किया जाता है। आप सिर्फ़ वरिष्ठ अधिकारियों से शिकायत ही कर सकते हैं। इन शिकायतों पर मुश्किल से कोई कार्रवाई होती है क्योंकि वरिष्ठ अधिकारियों को भी उनका हिस्सा मिलता है।
- भ्रष्ट तरीक़े से कमाई दौलत की वसूली का कोई कानून नहीं है। भ्रष्ट अधिकारी जेल से बाहर आकर उस दौलत का उपयोग कर आनंद उठा सकता है।
- भ्रष्टाचार के लिए मामूली सज़ा- भ्रष्टाचार के लिए न्यूनतम 6 माह का कारावास और अधिकतम 7 वर्ष के कारावास का प्रावधान है।

प्रबुद्ध नागरिकों द्वारा प्रस्तावित प्रणाली

- केंद्र में लोकपाल और राज्यों में लोकायुक्त स्वतंत्र निकाय होंगे। एसीबी और सीबीआई का इन निकायों में विलय कर दिया जाएगा। उन्हें किसी की अनुमति लिए बिना किसी भी अधिकारी अथवा नेता के ख़िलाफ़ जांच या कार्रवाई शुरू करने का अधिकार होगा। जांच एक वर्ष में पूरा कर लिया जाएगा और अगले एक वर्ष में मुकदमे की कार्रवाई पूरी हो जाएगी। भ्रष्टाचार साबित हो जाने पर दो वर्षों के भीतर भ्रष्टाचारी को जेल भेज दिया जाएगा।
- लोकपाल और लोकायुक्त को किसी भी भ्रष्ट अधिकारी को बर्खास्त करने का पूर्ण अधिकार होगा। सीवीसी और अन्य सभी विभागीय सतर्कता एजेंसियों का लोकपाल में और राज्यों के सतर्कता तंत्र का लोकायुक्त में विलय कर दिया जाएगा।
- लोकपाल और लोकायुक्त को किसी भी मंज़ूरी के बगैर किसी भी न्यायाधीश के ख़िलाफ़ जांच करने या मुकदमा चलाने का पूरा अधिकार होगा।
- लोकपाल और लोकायुक्त को प्रत्येक शिकायत सुननी होगी और जांच करनी होगी।
- लोकपाल और लोकायुक्त में सभी जांच पारदर्शी होंगी। जांच के बाद, मामले से जुड़े सभी अभिलेख सार्वजनिक कर दिए जाएंगे। लोकपाल और लोकायुक्त के किसी भी कर्मचारी के ख़िलाफ़ शिकायत की सुनवाई होगी और दो महीने के भीतर सज़ा सुना दी जाएगी।
- लोकपाल और लोकायुक्तों के अध्यक्ष और सदस्यों के चयन में राजनीतिज्ञों की कोई भूमिका नहीं होगी। उनका चयन एक पारदर्शी और जन सहभागिता की प्रक्रिया के माध्यम से होगा।
- लोकपाल और लोकायुक्त निश्चित समय सीमा में जन-शिकायतों का निवारण करेंगे, विलंब होने पर प्रतिदिन 250 रुपये के हिसाब से जुर्माना लगाया जाएगा, जिसकी वसूली दोषी अधिकारी के वेतन से की जाएगी और यह राशि पीड़ित व्यक्ति को मुआवजे के तौर पर दे दी जाएगी।
- भ्रष्टाचार के कारण सरकार को जो हानि होगी, उसे सभी दोषियों से वसूला जाएगा।
- अधिक सजा- न्यूनतम कारावास 5 वर्ष का और अधिकतम आजीवन कारावास होगा।

इस विधेयक की एक प्रति क़रीब दो माह पूर्व सरकार को भेजी जा चुकी है, परंतु अभी तक कोई उत्तर नहीं मिला है। सरकार को चाहिए कि वह जन-लोकपाल विधेयक को स्वीकार कर ले और देश को भ्रष्टाचार से मुक्ति दिलाए। ❑

(लेखक रेमन मैगसेसे पुरस्कार से सम्मानित सूचना का अधिकार और भ्रष्टाचार विरोधी अभियान से जुड़े समाजसेवी हैं।
ई-मेल : parivartan_india@rediffmail.com)

मुक्त बाज़ार से सामाजिक न्याय की नाहक उम्मीद

● रहीस सिंह

भारत ने जब से वैश्वीकरण और उदारवाद को अंगीकार किया है तब से जो प्रगति हुई है उसके बखान की अनवरत शृंखला जारी है। इसकी पुष्टि *फोर्ब्स* की सूची में अमीरों की तेज़ी से बढ़ती हुई संख्या, पांच से दस करोड़ प्रतिमाह वेतन पाने वाले मेधावियों की उपस्थिति करती है। लेकिन यह तरक़्क़ी उतनी सपाट नहीं जितना कि बताया जा रहा है बल्कि यह बहुत से अंतर्विरोधों से संपन्न है। इसलिए सबसे अहम सवाल यह उठता है कि क्या यह तरक़्क़ी दुनिया को सामाजिक न्याय मुहैया कराने में समर्थ है? क्या इसने उस व्यक्ति के लिए स्वराज का सही अर्थ प्रस्तुत किया है जिसकी बात गांधी किया करते थे?

25 नवंबर, 1949 को डॉ. आंबेडकर ने कहा था- ''26 जनवरी, 1950 को हम एक अंतर्विरोध से भरे जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। हमारे यहां राजनीति में बराबरी होगी और सामाजिक व आर्थिक जीवन में विषमता रहेगी। राजनीति में हम एक व्यक्ति, एक वोट और एक मूल्य का सिद्धांत स्वीकार कर रहे होंगे। अपने सामाजिक व आर्थिक जीवन में हम अपने सामाजिक व आर्थिक ढांचे के तर्क़ से एक व्यक्ति, एक मूल्य के सिद्धांत को नकारने की प्रक्रिया जारी रखेंगे। आखिर हम कब तक अपने सामाजिक व आर्थिक जीवन में समता को नकारते रहेंगे? अगर हम ज्यादा समय तक उसे नकारते रहते हैं, तो अपने राजनीतिक जनतंत्र को ख़तरे में डालकर ही ऐसा कर रहे होंगे। हमें इस अंतर्विरोध को जल्दी से जल्दी ख़त्म करना होगा, वरना जो लोग असमानता की मार झेल रहे होंगे, वे राजनीतिक जनतंत्र के उस ताने-बाने को तार-तार कर देंगे, जिसे इस सभा ने इतने श्रम से खड़ा किया है।'' आंबेडकर ने जिस ख़तरे की बात भारत के समक्ष रखी थी उस प्रकार के ख़तरे आज दुनिया के तमाम देशों में प्रकट हो रहे हैं। भारत में भी इसके भिन्न स्वरूप दिखाई दे रहे हैं जिनमें नक्सलवाद या माओवाद को शामिल किया जा सकता है। आखिर इन बातों की अनदेखी क्यों की गई? कारण शायद यह है कि हममें से कोई भी व्यक्ति अपने आप से यह पूछने का साहस नहीं रखता कि हम जो लक्ष्य पूरा कर रहे हैं वह किसी ग़रीब के किसी काम का है या नहीं? इसके विकासात्मक लक्ष्य के ज़रिये क्या वह अपने जीवन और अपने भाग्य को सुरक्षित कर पाने में सक्षम होगा? ऐसे बहुत सारे प्रश्नों के उत्तर ढूंढने की ज़रूरत है लेकिन अब दृष्टिकोण पूरी तरह से बदल चुका है। स्पष्ट तौर पर हमने अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में एक व्यक्ति, एक मूल्य के सिद्धांत को पूरी तरह से नकार दिया है। यह बात तो उस दौर में भी पूरी नहीं हो सकी जब आर्थिक मामलों में राज्य की सक्रिय भूमिका हुआ करती थी। अनुमान कीजिए वर्ष 1990 के बाद की स्थिति क्या होगी जब हमारा मनोदैहिक ढांचा ही बदल गया क्योंकि इस दौर में हम आंबेडकर के एक व्यक्ति एक मूल्य के सिद्धांत या गांधी के ट्रस्टीशिप से परे जाकर थॉमस फ्रीडमैन के 'द लक्सेस एंड ओलिव ट्री' की विचारधारा से चिपक गए हैं, जिसमें कल्पना का एक छोर भले ही भारत में हो लेकिन दूसरा अवश्य ही अमरीका या पूंजीवादी दुनिया में समाप्त होता है। इसमें फ्रीडमैन ने संदेश देते हुए अपेक्षा की है कि हम अमरीकी गतिशील विश्व के समर्थक हैं, खुले बाज़ार के पैरोकार हैं और उच्च तकनीक के पुजारी हैं। हम अपने मूल्यों और पित्जा हट, दोनों, का ही विस्तार चाहते हैं। हम चाहते हैं कि विश्व हमारे नेतृत्व में रहे और लोकतांत्रिक तथा पूंजीवादी बने, प्रत्येक ओठ पर पेप्सी हो और प्रत्येक कंप्यूटर में माइक्रोसॉफ्ट विंडो हो। इससे भले ही नियामक शक्ति के रूप में मुक्त बाज़ार की रचना का सपना पूरा हो जाए लेकिन इसमें गांधी के अंतिम पंक्ति के अंतिम व्यक्ति के लिए कौन-सी जगह होगी?

आज मानव विकास में सामाजिक न्याय के सिद्धांत को केवल राष्ट्रीय सीमाओं के अंदर ही सीमित कर यह सुनिश्चित नहीं किया जा सकता कि इसमें कौन शामिल है और कौन नहीं, क्योंकि आज विश्व ग्राम की परिकल्पना से अभिप्रेत होकर हम आगे बढ़ रहे हैं जहां पूरी दुनिया समतल हो चुकी है। इस समतल दुनिया में एक साथ डूबने और उतराने की प्रकृति और नियति समाहित है। इस दुनिया का सबसे ख़तरनाक चरित्र है पूंजी का एकलमार्गी बहाव और इसके ठीक विपरीत दिशा में ग़रीबी का बहाव। राष्ट्रों के मध्य असमान समृद्धि ने वैश्विक न्याय को प्रभावित किया है और राष्ट्रों के अंदर चल रही प्रतियोगिता तथा डार्विन के 'सर्वश्रेष्ठ की उत्तरजीविता' पर आधारित बाज़ारवादी विकास ने सामाजिक और आर्थिक न्याय को नेपथ्य की ओर धकेल दिया है। ऐसे में राज्य की भूमिका और शक्तिशाली होनी चाहिए थी लेकिन दुखद पक्ष यह है कि राज्य ही धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। फलतः पुनर्वितरण की वैधानिक व्यवस्था बेहद कमज़ोर पड़ती जा रही है। मजे की बात यह है कि यह जो कुछ भी हो रहा है वह सब उदारवाद के नाम पर हो रहा है।

दरअसल, वैश्वीकरण के शुरू होने के साथ ही 'कल्याणकारी राज्य' की अवधारणा गौण होने लगी थी। गांवों में बसने वाले किसानों, मज़दूरों, शिल्पकारों सहित ग़रीब आबादी को उसके ही भाग्य पर छोड़ दिया गया। बढ़ती महंगाई और बेरोज़गारी के बीच जैसे-जैसे

अमीरी-ग़रीबी का फ़ासला बढ़ता गया, वैसे-वैसे किसानों की आत्महत्या, भुखमरी से मौत और सामाजिक विषमता जैसी प्रवृत्तियां बढ़ती गईं या यों कहिए कि सामाजिक न्याय का सिद्धांत अप्रभावी होता गया। यह संताप केवल भारत ने ही नहीं झेला बल्कि पूरी दुनिया को झेलना पड़ा। संयुक्त राष्ट्र संघ वर्ष 2009 से पूरी दुनिया में सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए 20 फरवरी को सामाजिक न्याय दिवस के रूप में मना रहा है। हालांकि इससे कोई खास प्रगति हो पाएगी या फिर यह केवल एक परंपरा के तौर पर निभाया जाएगा, यह कहना मुश्किल है लेकिन इसकी ज़रूरत तो है। गौरतलब है कि विकास की इस छद्मवादी दुनिया की आबादी का 1/5 भाग हमेशा भूखा रहता है। प्रति दो सेकेंड में एक बच्चे की बीमारी से मृत्यु हो जाती है। डेढ़ अरब लोगों के लिए मेडिकल सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। रॉबर्ट मैकनमारा की रिपोर्ट कहती है कि 1 अरब, यानी दुनिया की आबादी का लगभग 20 प्रतिशत हिस्सा अत्यंत ग़रीबी का शिकार है। ग़रीब देशों में लगभग 35,000 लोग प्रतिदिन भूख से तड़पकर दम तोड़ देते हैं (समृद्ध देश इस पीड़ा से मुक्त हैं) (देखें तालिका-1)। विकासशील देशों के अधिसंख्य लोग 150 अमरीकी डॉलर में ही वर्षभर गुज़ारा करने के लिए विवश हैं और बहुत से लोग इससे भी कम आय पर गुजर-बसर करते हैं। दुनिया में 82.5 करोड़ युवा अशिक्षित हैं जिनमें से अधिकांश अविकसित और विकासशील देशों में हैं। 60 देशों के 40 प्रतिशत घरों में पानी की आपूर्ति नहीं है और लगभग 1.4 अरब लोगों के पास साफ़ पानी उपलब्ध नहीं है। 45 करोड़ से अधिक लोग मानसिक अथवा शारीरिक रूप से विकलांग हैं। ऐसा क्यों है? इसलिए नहीं कि दुनिया ने कोई प्रगति नहीं की है बल्कि इसलिए क्योंकि एक तो मानव लालची और मतलबपरस्त हो गया है और दूसरा इसलिए कि राज्य की भूमिका अत्यधिक कमज़ोर हो रही है। इसका एक कारण राष्ट्र-राज्य की सामरिक हथियारों की लिप्सा भी है। दुनिया के तमाम देश अपने लोगों को भूख और ग़रीबी से मुक्ति दिलाने के लिए उतने चिंतित और उत्सुक नहीं हैं जितना कि हथियारों का संग्रह करने के लिए। भूख से मुक्ति संभव है यदि सरकारें अपनी संपत्ति का रुख बजाय शस्त्रीकरण और नाभिकीय हथियारों के, अपने नागरिकों की ओर मोड़ दें। एक रिपोर्ट बताती है कि दो लड़ाकू विमानों की क़ीमत में एशिया और अफ्रीका के गांवों में लगभग 3,00,000 हैंडपंप लगाए जा सकते हैं जो लोगों के लिए पीने योग्य पानी मुहैया कराएंगे। लेकिन ऐसा नहीं हो पा रहा है। इन जीवनोपयोगी सुविधाओं से वंचित होने के बाद भी किसी मानवाधिकार या सामाजिक अथवा मानवीय न्याय को उपलब्ध कराने का दावा सही अर्थों में किया जा सकता है क्या?

उक्त रिपोर्ट पर ध्यान दें तो स्थिति स्पष्ट हो जाती है कि विकसित देशों के मुक़ाबले दुनिया के बाकी क्षेत्रों में स्थिति दयनीय है। अगर भारत की स्थिति पर गौर करें तो यहां एक बड़ा अंतर्विरोध यह दिखाई देगा कि जहां एक तरफ सरकार आर्थिक समृद्धि का ढिंढोरा पीट रही है वहीं दूसरी तरफ देश का एक बड़ा हिस्सा इस समृद्धि से कोसों दूर है। अमीर और ग़रीब को विकास की एक ही लाठी से हांकने के कारण जो अमीर हैं वे और अमीर होते जा रहे हैं और ग़रीब और ग़रीब। ट्रिकल डाउन सिद्धांत पूरी तरह से फेल हो रहा है। कल्याणकारी राज्य की अवधारणा धीरे-धीरे गौण होती जा रही है। इस वजह से आर्थिक उत्पादन की अपेक्षा वितरण की समस्या पैदा होती जा रही है क्योंकि भारत में मूल समस्या अब केवल उत्पादन की नहीं है बल्कि इसके साथ-साथ समान वितरण की है। यह संभव इसलिए नहीं हो पा रहा है क्योंकि सरकार यह भूलती जा रही है कि पूंजीवाद, समाजवाद या कोई अन्य अवधारणा, साधन मात्र है साध्य नहीं। साध्य तो समग्र समाज के विकास में निहित है, जिससे सामाजिक-आर्थिक न्याय उपलब्ध हो सके। लेकिन यूनिसेफ की रिपोर्ट बताती है कि भारत में हर दिन 5,000 बच्चे कुपोषण का शिकार होते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के मुताबिक दुनियाभर के कुपोषित लोगों का 27 फीसदी हिस्सा भारत में रहता है जबकि बच्चों के मामले में यह प्रतिशत 43 पहुंच जाता है। दुनिया के 88 विकासशील देशों का वर्ष 2009 में हंगर इंडेक्स तैयार किया गया था जिसमें भारत का स्थान 65वां था। एक अध्ययन के अनुसार भारत के आठ राज्यों में जितने ग़रीब हैं, उतने ही 26 अफ्रीकी देशों में हैं। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं द्वारा तैयार की गई मल्टीडाइमेंशनल पावर्टी इंडेक्स के मुताबिक भारत की 55 प्रतिशत आबादी यानी 64.5 करोड़ लोग ग़रीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। सरकार द्वारा जारी राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन की रिपोर्ट पर गौर करें तो शहरी बनाम ग्रामीण का द्वंद्व खुलकर सामने आता है। इसके अनुसार अभी भी ग्रामीण जनता का पांचवां हिस्सा मात्र 12 रुपये प्रतिदिन में जीने के लिए अभिशप्त है। 19 प्रतिशत ग्रामीणों के पास अपनी रोज़ी-रोटी चलाने के लिए वार्षिक 365 रुपये भी नहीं जुट पाते। गांवों का पांचवां हिस्सा मिट्टी से बनी दीवारों और छतों के नीचे रहने को विवश है और 31 प्रतिशत ग्रामीणों के पास बमुश्किल छत या दीवार में से किसी एक को पक्का करने की क्षमता विकसित हो पाई है। उत्पादकता के बावजूद ग्रामीण 251-400 रुपये प्रतिमाह में भोजन का काम चला रहे हैं जबकि शहरी क्षेत्रों में भोजन पर 451-500 रुपये प्रतिमाह ख़र्च किए जा रहे हैं। इसके मुक़ाबले वर्ष 2009 में 49 अरबपतियों के मुक़ाबले अब देश में अरबपतियों की संख्या 69 हो गई है। वर्ष 1998 तक सकल घरेलू उत्पाद में अरबपतियों का योगदान एक प्रतिशत से कम था और वर्ष 2005 में यह चार प्रतिशत से कम था लेकिन 2008 में यह बढ़कर 27 प्रतिशत हो गया।

सही अर्थों में भारत में ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में जिस प्रकार के विकास से आर्थिक दर में वृद्धि हुई है, उसका अधिकांश जनसंख्या से कोई सीधा वास्ता नहीं है। यही कारण है कि

तालिका-1

विश्व बैंक द्वारा निर्धारित विभिन्न क्षेत्रों में ग़रीबी का प्रतिशत

क्षेत्र	1990	2002	2004
दक्षिण एशिया एवं प्रशांत	15.4 प्रतिशत	12.33 प्रतिशत	9.07 प्रतिशत
यूरोप एवं मध्य एशिया	3.60 प्रतिशत	1.28 प्रतिशत	0.95 प्रतिशत
लातिनी अमरीका एवं कैरेबिया	9.62 प्रतिशत	9.08 प्रतिशत	8.64 प्रतिशत
मध्य पूर्व एवं दक्षिण अफ्रीका	2.08 प्रतिशत	1.69 प्रतिशत	1.47 प्रतिशत
दक्षिण एशिया	35.04 प्रतिशत	33.44 प्रतिशत	30.84 प्रतिशत
उप-सहारा अफ्रीका	46.07 प्रतिशत	42.63 प्रतिशत	41.09 प्रतिशत

स्रोत : विश्व बैंक रिपोर्ट, 2008

सकल घरेलू उत्पाद में तीव्र वृद्धि के बावजूद सामाजिक संघर्ष की स्थिति बनी हुई है। इस आर्थिक विकास में परिवारवादी पूंजीवाद ने कब्ज़ा कर लिया जो मध्यकालीन सामंतवाद से कहीं ज्यादा निरंकुश है। अंतर इतना है कि सामंतवाद में मौद्रिक पक्ष गौण था लेकिन अब पैसे की निरंकुशता है। आज सामाजिक और नैतिक मूल्यों वाले देश में परिवारवादी पूंजीवाद ने न हो सकने वाले और वर्जित के बीच की रेखा को धूमिल कर दिया है। दुखद बात यह है कि परिवारवादी पूंजीवाद देश में बढ़ रही असमानता और ग़रीबी की क़ीमत पर फल-फूल रहा है। निरंतर लाभ की इच्छा ने भारत में एक नये तरह की प्रतियोगिता पैदा कर दी है जिसके फलस्वरूप देश में दो भारत तैयार हो गए हैं।

इन असमानताओं और इनसे हुए मानवीय अधिकारों के हनन ने दुनियाभर में कुछ ऐसे स्वरों को उभरने का अवसर दिया जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर उन संस्थाओं या देशों को निशाना बना रहे थे जो या तो पूंजीवाद के हिमायती हैं या उसका नेतृत्व कर रहे हैं। सन् 1990 से पनप रहे इन असंतोषों को लातीन अमरीकी देशों में हुई प्रतिक्रियाओं में स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। इन देशों में जनआंदोलनों में वहां के मूल वाशिंदे सक्रिय रूप से भाग ले रहे थे जिनमें बोलीविया, पेरू, इक्वाडोर, ग्वातेमाला और मैक्सिको के मूल निवासियों की संख्या बहुत अधिक है । ये लोग न केवल रंग भेद के शिकार रहे हैं बल्कि सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी हाशिये पर रहे हैं। हालांकि मूल निवासियों ने संघर्ष पहले भी किया है जिसे उन्होंने या तो वामपंथियों के नेतृत्व में चलाया या फिर वे अपने जनाधार को स्पष्ट नहीं कर सके और दक्षिणपंथी सैनिक सरकारों द्वारा कुचल दिए गए लेकिन आज स्थिति बदली हुई है। आज उन्होंने आंदोलन की बागडोर अपने हांथों में ले रखी है जिसका परिणाम यह हुआ है कि पिछले पांच वर्षों में बोलीविया और इक्वाडोर में दो-दो सरकारें इन जनआंदोलनों की भेंट चढ़ीं। इन जनआंदोलनों ने कोलंबिया, वेनेजुएला और ग्वातेमाला में भी गति पकड़ी। मूल निवासी कहां तक इस व्यवस्था और उसमें सहायक संस्थाओं के ख़िलाफ़ हैं, इसका अंदाजा उस घटना से लगाया जा सकता है जो इक्वाडोर में घटी थी। इक्वाडोर में पाचाकूतिक आंदोलन ने अपने ही समर्थन से जिताए हुए राष्ट्रपति लूसियो गुतिऐरेंस को इसलिए पदच्युत कर दिया था क्योंकि वे अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष द्वारा निर्देशित रास्ते पर चलने लगे थे। कुछ अंतराल के बाद इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं की पुनरावृत्ति ट्यूनीशिया की जास्मिन क्रांति में भी दिखी जिसकी खुशबू मिस्र से होते हुए लीबिया, जॉर्डन, बहरीन, यमन, अल्जीरिया, लेबनान, ईरान और यहां तक कि चीन तक पहुंच गई है। अब ज़रूरत है कि दुनिया आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक न्याय का ढांचा पुनः दुरुस्त करे, अन्यथा पूरी दुनिया को अराजकता का शिकार होना पड़ सकता है। यहां पर वर्ष 1993 के अर्थशास्त्र के नोबेल पुरस्कार विजेता अमरीकी अर्थशास्त्री राबर्ट विलियम फासेज का निष्कर्ष सही लगता है कि दास प्रथा के कारण ही अमरीका को बाज़ारवादी व्यवस्था का नेतृत्वकर्ता बनने का अवसर मिला और इस प्रक्रिया में पूरी की पूरी नीग्रो नस्ल ही गायब हो गई। इसका मतलब यह हुआ कि यह बाज़ारवाद अपने विकास के क्रम में लगातार एक किस्म की दासता का निर्माण करता जाएगा। इसलिए कम से कम हमारे देश में आज फिर आवश्यकता है कि साठ के दशक की ग़रीबों की आमदनी को लेकर छह आने बनाम एक रुपये की स्व. राम मनोहर लोहिया और स्व. जवाहर लाल नेहरू की बहस को फिर जिंदा किया जाए अन्यथा सामाजिक-आर्थिक जीवन में 'न्याय' शब्द की उपादेयता समाप्त हो जाएगी। ❑

(लेखक आर्थिक मामलों के जानकार हैं।
ई-मेल : rahissing@gmail.com)

देश में इस्लामी बैंक शुरू होने का रास्ता खुला

केरल उच्च न्यायालय ने राज्य में देश के पहले इस्लामी बैंक की स्थापना का रास्ता साफ़ कर दिया है। अदालत ने केरल राज्य औद्योगिक विकास निगम (केएसआईडीसी) की मदद से इस्लामी बैंकों की तर्ज़ पर राज्य में एक इस्लामी वित्तीय संस्थान की स्थापना को चुनौती देने वाली दो जनहित याचिकाओं को ख़ारिज कर दिया।

मुख्य न्यायाधीश ने चेलामेश्वर और न्यायमूर्ति रामचंद्र मेनन की खंडपीठ ने कहा कि याचिकाकर्ता यह नहीं बता पाए कि जिस सरकारी आदेश को चुनौती दी गई है, वह किस तरह प्रत्यक्ष तौर पर एक विशेष धर्म को बढ़ावा दे रहा है। ये याचिकाएं जनता पार्टी के नेता एस. सुब्रमण्यम और हिंदु एक्या वेदी ने दायर की थी। सरकार ने अपने रुख का पक्ष लेते हुए दलील दी थी कि निवेश पूरी तरह व्यावसायिक है और इससे संविधान के धर्मनिरपेक्ष सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं होगा। कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत अल बरख फाइनेंशियल सर्विसेज ने अदालत को आश्वासन दिया था कि वित्तीय संस्थान की फंडिंग देश के कानूनों और शरीयत के सिद्धांतों के अनुसार होगी।

याचिका दायर करने वालों की शिकायत थी कि सरकार का फैसला संविधान के धर्मनिरपेक्ष सिद्धांतों के ख़िलाफ़ है। स्वामी की दलील थी कि संविधान के अनुच्छेद 27 में राज्य सरकार की किसी इकाई (इस मामले में केएसआईडीसी) के इस्लामिक बैंकिंग जैसे वेंचर में शामिल होने पर प्रतिबंध है। स्वामी ने कहा था कि इस्लाम की धार्मिक संहिता शरीयत के सिद्धांतों में ब्याज का भुगतान और इसे हासिल करना भी मना है और इसके साथ ही कुछ ऐसी गतिविधियों पर भी प्रतिबंध है, जो भारतीय कानूनों के तहत वैध हैं।

स्वामी का कहना था कि केरल राज्य औद्योगिक विकास निगम को अल बरख़ फाइनेंशियल सर्विसेज नाम की कंपनी खड़ा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। बैंक में इस्लामी विद्वानों को भी शामिल किया जाएगा। ये विद्वान शरीयत के सिद्धांतों के पालन को लेकर बैंक को सलाह देंगे। केरल के उच्च न्यायालय ने पिछले वर्ष अप्रैल में याचिका स्वीकार करने के समय निर्देश दिया था कि राज्य सरकार और इसके संस्थान इस्लामी बैंक की तर्ज़ पर बनने वाली वित्तीय कंपनी में वित्तीय या किसी अन्य तरह से भागीदारी न करें। ❑

सुशासन और मानवाधिकार

● सुभाष शर्मा

मानवाधिकारों का संरक्षण एवं संवर्धन कुशासन में संभव नहीं है क्योंकि वह विधिसमस्त और न्यायसम्मत नहीं होता। वास्तव में इसके कार्यान्वयन के लिए सुशासन की आवश्यकता होती है।

सुशासन को कई तरह से परिभाषित किया जा सकता है– विशेषताओं (गुणों) की दृष्टि से या संरचना की दृष्टि से। गुणों के आधार पर सुशासन के निम्नलिखित तत्वों की चर्चा के लिए समान कानून होंगे। चाहे कोई राजा हो या प्रजा, अमीर हो या ग़रीब, उच्च जाति का हो या निम्न जाति का, विकसित क्षेत्र का हो या अविकसित क्षेत्र का, गांव का हो या शहर का, शिक्षित हो या अशिक्षित, स्त्री हो या पुरुष, हिंदू हो या मुस्लिम या अन्य धर्म का, अफ़सर हो या अनुसेवक कानून के सामने सभी बराबर है। भारतीय संविधान की धारा चौदह के अनुसार समता का मौलिक अधिकार सभी नागरिकों को प्राप्त है और दूसरी ओर अमरीकी शासन पद्धति का अनुकरण करते हुए कानून की उचित प्रक्रिया अपनाने की बात कही गई है। इसके अलावा यह वर्णित है कि किसी अभियुक्त को भी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के तहत सुना जाए यानी दूसरे पक्ष को सुनवाई का मौका दिया जाए। इसलिए हत्या, बलात्कार जैसे जघन्य कृत्यों के अपराधियों को भी पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए जाने के बाद तुरंत दंडित नहीं किया जाता, बल्कि उसे मौका दिया जाता है कि वह जुर्म क़बूल करे अथवा इनकार करे। क़बूल करने पर न्यायिक अधिकारी द्वारा शीघ्र उसे दंडित किया जाता है। क़बूल न करने पर उसे मामले का विचारण होता है। उसे बचाव के लिए वकील को रखने का मौका मिलता है और यदि वह वकील रखने में सक्षम नहीं हो तो राज्य की ओर से सरकारी ख़र्च पर उसे वकील मुहैया कराया जाता है।

यदि हम इस संवैधानिक प्रावधान को यथार्थ के धरातल पर देखें तो पाते है कि इसके अपवाद ज्यादा हैं। पहला, बड़े राजनेता, अधिकारी, व्यापारी, व्यवसायी आदि ज्यादा पैसा ख़र्च करके ज्यादा योग्य वकील रखकर मुकदमे से बरी हो जाते हैं। हवाला कांड, हिंदुजा और सेंट किट्स कांड इसके मुख्य उदाहरण हैं। दूसरे, निर्दोष लोग बड़ी तादाद में जेलों में विचारण के लिए सड़ रहे हैं। भारतीय जेलों में प्राय: क्षमता से दोगुने कैदी रह रहे हैं। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा-151 के तहत संदेहमात्र पर या शिकायत पर अकारण ही पुलिस किसी को गिरफ्तार कर सकती है। उन्हें मुकदमे की तारीख़ों पर पेश ही नहीं किया जाता। अदालतों की संख्या की कमी, नियमित रूप से न्यायालय कार्य न निपटाने तथा वकीलों के दवाब में बार-बार मौका देने के कारण विचारण में काफी विलंब होता है। तीसरे, न्यायिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार ने जड़ जमा ली है। इस कारण दोषी प्राय: बरी हो जाते हैं। चौथे, कुछ अमीर लोग या तो खुद बचकर अपने कारिंदों को अभियुक्त बना देते हैं अथवा सज़ा होने पर उनके नाम पर दूसरा कोई व्यक्ति सज़ा काटता है।

उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जिले में बलात्कार के बाद एक नाबालिग लड़की की हत्या कर दी गई मगर पुलिस ने बड़ी रक़म लेकर अपराधियों के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की। इसी प्रकार दहेज हत्या के एक मामले में भभुआ (बिहार) के पुलिस अधीक्षक ने चालीस हज़ार रुपये लेकर मामले को रफ़ा-दफ़ा कर दिया। विधि के शासन का निहितार्थ है कि कानूनी प्रावधान एवं प्रक्रिया, नियम एवं विनियम लिखित, प्रासंगिक एवं अद्यतन होंगे जिनमें सभी के लिए एकरूपता हो मगर व्यवहार में व्यक्ति को देखकर नियमों की व्याख्या की जा रही है। यानी 'शो मी द फेस एंड आई विल शो यू द रूल' सिद्धांत का प्रचलन है।

सूचना का अधिकार

भारतीय संविधान में सूचना का अधिकार अलग से वर्णित नहीं है किंतु सर्वोच्च न्यायालय ने एस.पी. गुप्ता, राजनारायण तथा अन्य विभिन्न मामलों में जीने के अधिकारी में सूचना का अधिकार शामिल बताया है। लोकतंत्र में जनता को अधिकार है कि वह यह अच्छी तरह से समझे कि सरकार क्या कर रही है, कैसे कर रही है और क्या नहीं कर रही है। इससे पारदर्शिता आएगी। मगर अंग्रेजों के ज़माने से ही सरकारी गोपनीयता अधिनियम, 1923 अभी भी लागू है जिसके कारण सरकारी अधिकारी-कर्मचारी अपनी बात नहीं बता पाते हैं– अर्थात वे अपने को भी ठीक से नहीं बचा पाते। इस भय और रहस्य के माहौल में कई अधिकारी-कर्मचारी नाज़ायज़ फ़ायदा उठाकर जनता को गुमराह करते हैं, उनसे रिश्वत लेते हैं और कार्य में विलंब भी करते हैं। इस अपारदर्शी और रहस्यात्मक व्यवस्था का बखूबी चित्रण फ्रांत्स काफ्का ने अपनी विश्व प्रसिद्ध कहानी 'मेटामोरफोसिस' (कायांतरण) में की है जहां मुख्य पात्र अचानक एक कीड़ा बन जाने को अभिशप्त होता है। पूरी प्रक्रिया की जानकारी न होने से भी जनता को दलालों और भ्रष्ट कर्मचारियों के हाथों शहीद होना पड़ता है। कई वकील अपने मुवक्किलों से कहते रहते हैं– 'डेट लेबा की तारीख?' और डेट के लिए ज्यादा फ़ीस लेते हैं। अशिक्षा के कारण ग़रीब जनता मुकदमे में कई तरह से परेशान होती है।

यद्यपि राजस्थान, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गोवा, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, दिल्ली, मध्य प्रदेश आदि ने सूचना के अधिकार को सबसे पहले कानूनी रूप दे दिया किंतु भारत सरकार ने पहले सूचना स्वातंत्र्य अधिनियम, 2002 को कारगर नहीं बनाया क्योंकि इसमें दंड और स्वतंत्र अपील की समुचित व्यवस्था नहीं थी। उसने आगे सूचना का अधिकार कानून, 2005 लागू किया जो काफी प्रगतिशील एवं व्यापक है।

विकेंद्रीकरण

सुशासन की एक विशेषता विकेंद्रीकरण है अर्थात न केवल उच्च अधिकारियों द्वारा

कतिपय प्रशासनिक, वित्तीय एवं अन्य शक्तियों का प्रत्यायोजन हो, बल्कि संरचना के स्तर पर भी ऐसी शक्तियां निचले स्तर पर स्वत: अंतर्निहित हों। यह विभाजन एक तो प्रशासनिक अधिकारियों के स्तर पर आवश्यक है और दूसरे पंचायती राज संस्थाओं के स्तर पर। किंतु ऐसा भी देखा गया है कि साहस की कमी के कारण भी अधिकार प्राप्त हो गए हैं किंतु ऐसा देखा गया है कि ग्राम पंचायत स्तर पर मुखिया (या ग्राम प्रधान), ग्राम सभा की परवाह नहीं करते। पंचायत समिति ब्लॉक स्तर पर ब्लॉक प्रमुख, ब्लॉक विकास समिति की परवाह नहीं करते और जिला स्तर पर अध्यक्ष, जिला परिषद की परवाह नहीं करते। अर्थात प्राय: एक दबंग व्यक्ति का शासन अपने क्षेत्र में चलता है जो स्वस्थ लोकतंत्र की आत्मा के विपरीत है। किसी विषय के बारे में एक समूह एक व्यक्ति से बेहतर और ज्यादा व्यापक रूप से सोचता-विचारता है उसकी वर्तमान और भावी समस्याओं से रू-ब-रू होता है और उनके समाधान के उपाय भी सुझाता है। दूसरे, समूह का निर्णय होने से उसका कार्यान्वयन बेहतर होता है क्यों सभी उससे अपने को जुड़ा पाते हैं। किंतु प्रशासन के स्तर पर शक्तियों का केंद्रण अधिक है। अधिकारियों के पदस्थापन की फाइल सरकार (मंत्री) के पास भेजी जाती है जिसमें समय तो लगता ही है इसके अलावा उस स्तर पर संशोधन किए जाने से समस्या भी पैदा होती है। वास्तव में हर विभाग/मंत्रालय में एक स्थापना समिति गठित होती है जिसके प्रमुख विभागीय सचिव होते है और अराजपत्रित कर्मचारियों के मामले में विभागाध्यक्ष (निदेशक आदि) होते हैं। उस समिति में कई सदस्य होते हैं। उनका निर्णय अंतिम होना चाहिए। मगर ऐसा नहीं होने से ट्रांसफर उद्योग फल-फूल रहा है। प्रथम श्रेणी के अधिकारियों के स्थानांतरण-पदस्थापन के लिए मुख्य सचिव या उनके समक्ष अधिकारी की अध्यक्षता में एक स्थापना बोर्ड होना चाहिए। इससे विवेकयुक्त और पारदर्शी कार्रवाही होगी। राजनीतिक हस्तक्षेप होने के कारण ही कई विभागों में समय के पूर्व बार-बार स्थानांतरण होता है। जबकि किसी नये विभाग/कार्यालय में सभी कार्यों को सही-सही समझने में प्राय: छह माह का समय लग जाता है। अगले छह माह नयी योजना का आधार-पत्र तैयार करने में लग जाते हैं। उसके बाद कार्यान्वयन, अनुश्रवण और मूल्यांकन के लिए अतिरिक्त दो वर्ष मिलने चाहिए।

क़रीब-क़रीब सभी राज्यों की सरकारों और केंद्र सरकार के बदलने पर मुख्य विभागों और जिलों के अधिकारी बदल दिए जाते हैं क्योंकि पूर्व के अधिकारियों पर उनका विश्वास नहीं होता जबकि नौकरशाही स्थायी, निष्पक्ष और राजनीति से विमुख मानी जाती है। फिर बार-बार स्थानांतरण से स्थानांतरण भत्ता में ख़र्च, बच्चों की पढ़ाई में बाधा, कार्य की गतिशीलता में बाधा आदि समस्याएं भी पैदा होती हैं। दूसरी ओर कुशासन का दूसरा पहलू यह है कि कुछ विश्वासपात्र लोग एक जगह पर लंबे अरसे तक बने रहते हैं। कई कार्यालयों में एक ही कार्य (टेबल) एक सहायक/प्रशाखा पदाधिकारी दशकों तक करता रहता है जिससे वहां उसका स्वार्थ-व्यूह तैयार हो जाता है।

संरचना की दृष्टि से देखा जाए तो पूरे समाज के तीन प्रमुख खंड हैं : राज्य, बाज़ार और लोक समाज (सिविल सोसायटी)। राज्य के अंतर्गत कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका तीनों आते हैं। बाज़ार का आशय सिर्फ़ खास स्थान से नहीं है बल्कि किसी भी लेन-देन के कार्य से है जहां मुनाफ़ा कमाना तात्कालिक या दीर्घकालिक उद्देश्य होता है। गांव में शुद्ध व्यावसायिक महाजन की सूदखोरी और अंशाकालिक सूदखोरी भी बाज़ार के अंतर्गत है। लोक समाज का अर्थ परिवार से हटकर ऐसी संस्थाओं से है जो मुनाफ़ा कमाने के लिए नहीं, बल्कि सेवाभाव से कार्य करती हैं, जैसे स्वयंसेवी संस्थाएं, विभिन्न कार्यों में लगे कामगारों के संगठन (ट्रेड यूनियन, शिक्षक, संघ) आदि। लेकिन आज के उपभोक्तावादी-पूंजीवादी युग की स्थिति यह है कि राज्य अपने विभिन्न दायित्वों यथा– शिक्षा, स्वास्थ्य, राशन, सड़क, जलापूर्ति, बिजली की आपूर्ति आदि से मुकर रहा है। सरकारी विद्यालयों को जर्जर बना दिया गया है तथा निजी विद्यालयों के फलने-फूलने की ज़मीन तैयार कर दी गई है। उच्च अैर मध्यम वर्ग अपने बच्चों को निजी विद्यालयों/कॉलेजों में चंदा/कैपिटेशन फीस देकर पढ़ाने और कोचिंग/ट्यूशन कराने में अपने को धन्य समझता है तथा प्रतिष्ठा का प्रतीक भी समझता हे। दूसरी ओर सरकारी विद्यालयों में पुस्तकालय, प्रयोगशाला, पीने का पानी, खेलकूद की सुविधा, सांस्कृतिक कार्यक्रम, शिक्षण-सहायता सामग्री आदि का नितांत अभाव रहता है और वे पढ़ाई के नाम पर खानापूरी करते हैं। फिर शिक्षक न तो समय पर पढ़ाने जाते हैं और न पढ़ाने में रुचि लेते हैं। बिहार में उच्च विद्यालय गोबरहिया दोन (बेतिया) के दस शिक्षक और 3 कर्मचारी दस वर्षों तक बिना स्कूल गए वेतन लेते रहे। निरीक्षण के बाद उन सब को निलंबित किया गया। मगर शिक्षक संघ अंत तक इसका विरोध करता रहा और नए शिक्षा सचिव से संबंध स्थापित कर उन सबको मात्र-चेतावनी देकर निलंबन से मुक्त कराकर वही पदस्थापन करा लिया। ऐसे माहौल में नयी प्रतिभाएं कुंद हो जाती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि विभागीय मंत्री, विभागीय सचिव तथा अन्य अधिकारी इस पर ध्यान नहीं देते, शिक्षकों और विद्यालयों का दिशा-निर्देशन नहीं करते। कई शिक्षक कोचिंग में व्यस्त रहते हैं। यदि दोषी को समय पर दंड मिले और ईमानदार-निष्ठावान को पुरस्कृत किया जाए तो निश्चित रूप से यह बदहाली बदल सकती है।

आशा की किरण के रूप में कुछ राज्यों और स्वयंसेवी संगठनों द्वारा किए गए अच्छे कार्यों को अन्य राज्यों के द्वारा अपनाया जाना जनहित में होगा। उदारहण के तौर पर, स्वास्थ्य की जो सुविधाएं केरल में आम लोगों को दी जाती हैं, वे देश के तमाम ग़रीब लोगों के हित में सिद्ध होंगी। राजस्थान में राजेंद्र सिंह के नेतृत्व में तालाबों/नदियों आदि में जल संग्रह की जो सस्ती, सामुदायिक एवं टिकाऊ व्यवस्था जनप्रयास से की गई है वह अनुकरणीय है। वहां तमाम सूखे नदी-नालों में पानी इकट्ठा करके सिंचाई की व्यवस्था हो सकी है और खाद्यान्नों तथा सब्ज़ियों की अच्छी खेती हो रही है। राजस्थान में ही मज़दूर किसान शक्ति संगठन ने जन सुनवाई के ज़रिये मनरेगा तथा अन्य सरकार कार्यक्रमों के अंतर्गत निर्माण कार्यों के मस्टर रोल, वाउचर, विपत्र आदि की लेखापरीक्षा की तथा उन्हें गलत पाए जाने पर लाखों रुपये संबंधित अभिकर्त्ताओं से वापस कराए गए। इससे भ्रष्टाचार पर काफ़ी हद तक अंकुश लगा और शासन-प्रशासन के कार्यों में पारदर्शिता एवं जवाबदेही आई। पंजाब में सुखो माजरी में जल संग्रहण की अच्छी सामूहिक व्यवस्था होने से सिंचाई, घास की बिक्री आदि से खुशहाली आई। इस व्यवस्था की खासियत यह थी कि गांव के भूमिहीनों को भी पानी अपने हिस्से एवं हक के रूप में मिला जिससे उन्होंने खेतिहर लोगों को बेचकर अच्छी आय प्राप्त की। राजस्थान, गुजरात एवं मध्य प्रदेश में वर्षा जल को संरक्षित एवं सुरक्षित रखने

(शेषांश पृष्ठ 22 पर)

अन्याय के पुनर्जन्म काल में सामाजिक न्याय

● जगदीश प्रसाद मीणा

न्याय का तात्पर्य प्रक्रिया भी है और परिणाम भी। पर अपने दोनों ही अर्थों में यह 'उपयुक्तता' की अवधारणा से जुड़ा हुआ है। उपयुक्तता से हमारा अभिप्राय इस बात से है कि जो भी निर्णय हो रहा है और जिस ढंग से हो रहा है वह व्यक्ति और परिस्थिति को ध्यान में रख कर किया जाए और उसमें किसी भी तरफ पक्षपात नहीं हो।

एक आदर्श स्थिति में समाज में प्रत्येक व्यक्ति का अस्तित्व बिना किसी भेदभाव के स्वीकार्य हो तथा समाज में सभी सहूलियतें उसे सम्मानित व्यक्ति के रूप में पाने का अधिकार हो न कि उसकी सामाजिक, आर्थिक एवं अन्य कारणों की वजह से। साथ ही उसे अपना स्थान अपनी योग्यता के अनुसार हासिल करने के सभी अधिकार प्राप्त हों तथा उसके अधिकारों, अस्तित्व एवं आकांक्षाओं का समान रूप से आदर भी किया जाए। इसका अभिप्राय है कि व्यक्ति के मानव अधिकार सर्वोपरि हों। मनुष्य जाति की सदस्यता के फलस्वरूप जो उसे प्राप्त है उसका सभी के द्वारा आदर एवं सम्मान किया जाए। इसी को हम आदर्श सामाजिक न्याय की स्थिति कह सकते हैं। प्रश्न उठता है कि इस मार्ग में बाधा क्या है? इस प्रश्न का उत्तर हमें दुखी तथा शर्मसार करने वाला है क्योंकि दोषी कोई और नहीं हम स्वयं हैं। मानव अधिकार एवं गरिमा को ठेस पहुंचाने का काम मनुष्य और उसके द्वारा तैयार की गई व्यवस्थाएं और संस्थाएं ही कर रही हैं।

सामाजिक अन्याय की बात इसी प्रसंग में उठती है। जब समाज की संरचना, उसका ढांचा स्वयं समाज के सदस्य या वर्ग विशेष के हित और कल्याण के विरुद्ध हो जाए तो उसे सामाजिक अन्याय कहेंगे। व्यापक अर्थ में सामाजिक अन्याय एक प्रकार का संस्थागत अन्याय है। उदाहरण के लिए अस्पृश्यता समाज के एक विशेष वर्ग को दूसरों से हीन या कमतर आंकती है। यह सामाजिक अन्याय है। दलितों का सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश वर्जित होना तथा जातिगत आधार पर उन्नति के अवसरों एवं सामाजिक अधिकारों से वंचित करना उस व्यक्ति विशेष या समुदाय के प्रति सामाजिक अन्याय है।

सामाजिक अन्याय की परिधि बड़ी व्यापक है। उसमें वे सारे तरीक़े शामिल हैं जो व्यक्ति के जायज़ हक़ और अधिकार पर प्रतिबंध लगाते हैं और उनको पाने के मार्ग में बाधा खड़ी करते हैं। दुख की बात यह है कि बहुत से सामाजिक अन्याय छद्म रूप में अथवा अप्रत्यक्ष रूप से समाज में व्याप्त हैं जिनका अस्तित्व जान-बूझकर भी नक़ारा जाता है। पूर्वग्रह ग्रस्त एवं भेदभावपूर्ण अनेक ऐसे मामले आए दिन सामने आते हैं जिनमें व्यक्ति और समुदाय को उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर अनुचित तरीक़े से अवसरों से वंचित किया जाता है तथा अयोग्य और कम योग्यता रखने वाले लोगों या समुदायों को लाभान्वित किया जाता है। इनकी परिणति कभी-कभी बड़ी भयानक हो जाती है। खाप पंचायत द्वारा अंतरजातीय विवाह करने वाले युगलों को मार दिया जाना ऐसा ही उदाहरण है। बेगार करने से मना करने पर सामाजिक बहिष्कार करने एवं शारीरिक प्रताड़ना देने के असंख्य मामले आए दिन सामने आते रहते हैं जो इस बात को सिद्ध करते हैं कि सामाजिक न्याय अभी भी हमारे समाज में एक सपना बना हुआ है।

सामाजिक अन्याय से लड़ने और उससे निज़ात पाने के लिए वैधानिक या कानूनी उपाय करने के साथ ही सकारात्मक भेदभाव की नीति, समाज के उपेक्षित वर्गों को मुख्यधारा में लाने का हमारी शासन व्यवस्था का प्रयास है लेकिन इसको लागू करने का दायित्व उन्हीं लोगों के हाथ में है जो इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था का अंग होने की वजह से पूर्वाग्रहों से ग्रसित हैं। यही कारण है कि संविधान में सामाजिक न्याय की व्यवस्था को स्वीकार किए जाने के 60 वर्षों के बाद भी हम उस व्यवस्था को स्थापित करने की दिशा में अभी भी प्रयासरत हैं। इसके लिए आर्थिक और अन्य तरह के उपाय भी किए गए हैं, तमाम योजनाएं शुरू की गई हैं ताकि सामाजिक अन्याय की गिरफ़्त में आए लोगों की देखभाल हो सके। उन्हें नौकरी के अवसर, सस्ते ऋण तथा आवश्यक सुविधाएं जुटाने का प्रयास जारी है, पर इनको लागू करना और अच्छी तरह लागू करना ताकि केवल सुपात्र को ही इसका लाभ मिले, एक बड़ी चुनौती साबित हो रही है। बहुत से अवांछित एवं अपात्र लोग इस लाभ की बहती गंगा में हाथ धो रहे हैं। जो पात्र नहीं हैं उन्हें लाभ मिल रहा है और जो असली हक़दार हैं वे उससे वंचित हो रहे हैं।

सामाजिक भेदभाव की जड़ें गलत परंपराओं, व्यवस्थाओं में तो हैं ही, साथ ही आज की अर्थ

लोलुप मानव प्रवृत्ति में भी है। आज जितने घोटाले और भ्रष्टाचार के कारनामे हो रहे हैं वे यही बताते हैं कि आर्थिक उन्नति के चलते आर्थिक शोषण और भ्रष्टाचार के पैमाने और अवसर भी उतनी ही तीव्रता और व्यापकता से पैदा हो रहे हैं। शायद यह भेदभावपूर्ण सामाजिक व्यवस्था से उपजे मूल्यों के परिवेश में विकसित व्यक्तित्व वाले उच्च पदों पर आसीन व्यक्तियों के चरित्र की परिलक्षिति है। एक आदर्श राष्ट्र चरित्र निर्माण के लिए हमें सामाजिक न्याय व्यवस्था वाले समाज की आवश्यकता है जो उत्तम मानव चरित्र के निर्माण में सहायक हो।

कहा जा सकता है कि हम एक ऐसे समय में जी रहे हैं जब नैतिकता और मनुष्यता के अर्थ बदल रहे हैं। यह एक भयावह स्थिति है। सामाजिक अन्याय का पुनर्जन्म हो रहा है। उसका नया अवतार जटिल है क्योंकि वह सफेदपोश है और ऊपर से सभ्य नज़र आता है। वह भ्रमित करने वाला है।

ऐसी पहल और हस्तक्षेप हो जिनसे मानव अधिकार की स्थापना के मार्ग में जो बाधाएं हैं उन पर नियंत्रण किया जाए और एक भयमुक्त, समाज का निर्माण हो जिससे हर कोई सिर उठा कर चल सके। सामाजिक अन्याय को समाप्त करना एक गंभीर चुनौती है जो हमारे समाज में प्रचलित सामाजिक, आर्थिक और वैधानिक पद्धति और प्रावधानों के कारण फल-फूल रहा है। इसे देख कर भी हम अनदेखा करने पर मज़बूर हैं। न्याय पाना टेढ़ी खीर है। न्यायालय का काम बड़ा समय लेता है और मुकदमा लड़ना बड़ा अर्थ-साध्य है। वकीलों की फ़ीस बढ़ती जा रही है। आज भारत की मानसिकता अर्थ प्रधान होती जा रही है और ऊपरी चमक-दमक में गांधीजी की कल्पना का भारत विस्मृत होता जा रहा है। भारत आज भी गांवों, किसानों, ग़रीबों का देश है। उनकी आवाज़ सुनना ज़रूरी है। उनकी उपेक्षा करना हितकारी नहीं है। ऐसा करना सबसे बड़ा बौद्धिक और सामाजिक अन्याय है। ग़रीब और धनी, संपन्न और विपन्न भारत की श्रेणियों में समाज का विभाजित होना किसी भी तरह ठीक नहीं है। सामाजिक न्याय का स्वप्न तभी साकार होगा जब यह खाई पटेगी। इसके लिए हम सबको सोचना होगा और काम करना होगा। हमारा यह जनजागरण अभियान तथा अभीष्ट लक्ष्य तभी पूरा होगा जब हमारे देश का प्रत्येक नागरिक बिना किसी भय के अपना जीवन मर्यादा व गरिमा के साथ जी सकेगा और तभी हम *सर्वे भवन्तु: सुखिन* को सार्थक कर सकने में सफ़ल हो सकेंगे।

भारत सरकार ने मानव अधिकार संरक्षण अधिनिमय, 1993 लागू करके एक बार पुन: सामाजिक न्याय को सुनिश्चित एवं सुदृढ़ करने की इच्छा जताई है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग एवं राज्य अधिकार आयोगों की स्थापना इस दिशा में एक ऐतिहासिक क़दम है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने कई ऐसे क़दम उठाए हैं जैसे स्वास्थ्य का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, भोजन का अधिकार आदि हर मानव को सुरक्षित रखना, बंधुआ मजदूरी प्रथा, मैला ढोने की प्रथा, बाल मजदूरी आदि व्यवस्थाओं के उन्मूलन का प्रयास, वृद्ध, महिला एवं बाल कल्याण के क्षेत्र के कार्य करना, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के अधिकार सुनिश्चित करना आदि ऐसे प्रयास हैं जो सामाजिक न्याय व्यवस्था स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं। इस संदर्भ में *नीतिशतक* का निम्न श्लोक आज भी उतना ही प्रासंगिक है– *न्यायात् पथ: प्रविचलन्ति पदं न धीरा:*। अर्थात न्याय पर चलने वाले कभी भी अपने पथ से विचलित नहीं होते। ❑

(लेखक भारतीय प्रशासनिक सेवा से संबद्ध हैं तथा संप्रति राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नयी दिल्ली में संयुक्त सचिव हैं।
ई-मेल : jsnhrc@nic.in)

(पृष्ठ 20 का शेषांश)

के लिए बड़े पैमाने पर जलछाजन आदि बनाए गए जिसका सकारात्मक असर जलस्तर में वृद्धि, उपज में बढ़ोतरी आदि में दिखाई दिया। 'प्रोब' टीम ने अपने अध्ययन में पाया है कि शिक्षा के क्षेत्र में हिमाचल प्रदेश में बेहतर काम हुआ है– शिक्षकों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, आधारभूत संरचनाओं का विकास, शिक्षण-सहायता सामग्री, पढ़ाई के कुल दिन, पढ़ाई की गुणवत्ता, अभिलेखों का रख-रखाव, पाठ्यपुस्तकों का निर्माण, खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम, अभिभावकों/समुदायों की भागीदारी, न्यूनतम अधिगम स्तर आदि।

बिहार में पटना नगर निगम की आय बढ़ाने हेतु तत्कालीन प्रशासक सुनील कुमार सिंह ने क्षेत्र आधारित प्रणाली ईजाद की जो देश-विदेश में 'पटना मॉडल' के नाम से जानी गई इसके लिए संयुक्त राष्ट्र ने उन्हें सम्मानित भी किया। लेकिन इसका लाभ बिहार के अन्य नगरनिगमों और नगरपालिकाओं ने नहीं उठाया। सुशासन के लिए आवश्यक है कि किसी भी प्रौद्योगिकी को हम स्थानीय वातावरण, समय, स्थान के संदर्भ में परखें और तभी अपनाएं जब उससे पारिस्थितिकी को नुक़सान न हो यानी उत्पादन तथा पर्यावरण, पदार्थ, मनुष्य एवं पशु-पौधे के बीच सामंजस्य बना रहे। चूंकि 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है', इसलिए हम आशान्वित हैं कि इन्हीं समस्याओं के बीच से समाधान भी निकलेगा। इसके लिए शासन-प्रशासन को न्यायसंगत, पारदर्शी, जबावदेह, राजनीतिक रूप से तटस्थ, नैतिक, दक्ष और कर्तव्यनिष्ठ होना होगा। यह तभी संभव होगा जब राजसत्ता में इच्छाशक्ति हो, और कुछ कर गुजरने का साहस हो और जनता की ओर से निरंतर, समुचित एवं सामूहिक दबाव बना रहे। आज ज़रूरी है कि हर क्षेत्र में 'सामाजिक अंकेक्षण' होता कि सरकार द्वारा शुरू की गई योजनाएं कितनी कारगर हैं, कहां तक उनकी प्रासंगिकता है, उनमें क्या खामियां हैं और क्या सुधार या बदलाव होने चाहिए, इसका आकलन किया जा सके। मंत्रियों और उच्चाधिकारियों के आवासन, यात्रा, बैठक, वाहन आदि के नाम पर होने वाले अनावश्यक खर्चों को बंद कर दिया जाना चाहिए। प्रधान मंत्री, राष्ट्रपति, मुख्यमंत्री, मंत्री के कारवां के साथ सैकड़ों लोगों के विदेश भ्रमण में करोड़ों रुपये ख़र्च होते हैं, जो बिल्कुल अनुचित है। रहन-सहन से लेकर निर्णय लेने तक जनता और सत्ता के बीच की मोटी दीवार गिरानी होगी, तभी कुशासन की परिणति सुशासन में होगी। राजसत्ता असली मायने में लोकसत्ता के अनुसार कार्य करे जिससे परस्पर दूरी, भ्रम एवं संदेह न रहे और लोकतंत्र की सार्थकता सिद्ध हो सके। तभी और तभी मानवाधिकारों का अक्षुण्ण संरक्षण एवं संवर्धन होगा, अन्यथा कुशासन से मानवाधिकारों की धज्जियां उड़ाई जाती रहेंगी। ❑

(लेखक भारतीय प्रशासनिक सेवा से संबद्ध हैं।
ई-मेल : sush84br@yahoo.com)

मानवाधिकार और सामाजिक न्याय

वैकल्पिक मातृत्व की व्यवस्था में शिशु के अधिकार

● प्रतिभा

1978 में भारत की पहली और दुनिया की दूसरी टेस्ट ट्यूब बेबी के रूप में 'दुर्गा' अथवा 'कनुप्रिया' के जन्म के 33 वर्षों के बाद आज इन विट्रो फर्टिलाइजेशन (आईवीएफ अथवा टेस्ट ट्यूब) और अन्य तरीक़ों के माध्यम से दुनियाभर में पैदा होने वाले बच्चों की संख्या आधे करोड़ के आंकड़े को छू रही है। तात्पर्य यह है कि उस समय की अनूठी और अचंभित कर कर देने वाली यह चिकित्सकीय प्रक्रिया आज मुख्यधारा की सामाजिक घटना बन चुकी है। आज संतानहीनता और बांझपन व्यक्तिगत त्रासदी नहीं रह गई है और भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर) ने भी अखिल भारतीय स्तर पर संतानहीनता पर अध्ययन प्रारंभ किया है।

इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर पॉपुलेशन साइंसेज (आईआईपीएस) के शोधकर्ताओं ने देश की 2001, 1991 तथा 1981 की जनगणना रिपोर्टों के आधार पर दिखाया है कि भारत में 1981 से संतानहीनता के मामलों में 50 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है और इसका कारण दंपतियों द्वारा बच्चा पैदा न करने के फ़ैसले के स्थान पर बढ़ती संतानहीनता है। भारतीय समाज के परंपरागत पारिवारिक ढांचे, परिवारों में बच्चों की महत्वपूर्ण भूमिका, लड़कों की विशेष चाहत तथा संतानहीनता से जुड़े कलंक की पृष्ठभूमि में यदि इस तथ्य को देखें तो आश्चर्य नहीं होगा कि गर्भधारण कराने में मदद करने वाले निदान एवं उपचारों की मांग में अत्यधिक वृद्धि हो गई है। माता-पिता बनने की अपनी अतृप्त इच्छा की तृप्ति के लिए नि:संतान दंपति लीक से हटकर, अब कुछ समय पहले तक असामान्य और अप्राकृतिक माने जाने वाले वैकल्पिक उपायों का सहारा लेने से नहीं कतरा रहे हैं। इन्हीं में से एक साधन है 'वैकल्पिक मातृत्व' अथवा 'सरोगेसी' जो पिछले कुछ समय से पुनरुत्पादन तकनीकी में आए क्रांतिकारी परिवर्तनों के प्रतीक के रूप में उभरा है।

सामान्य रूप से सरोगेसी वह प्रक्रिया है जिसमें एक स्त्री किसी अन्य स्त्री के लिए उसके बच्चे को अपने गर्भ में धारण करती है- इस अभिप्राय से कि जन्म देने के बाद उस बच्चे को उसके अधिकारी माता-पिता को दिया जा सके। जीव वैज्ञानिक दृष्टि से सरोगेसी प्रजनन व्यवस्था का वह रूप है, जिसमें एक स्त्री किसी दंपति के निषेचित भ्रूण को अपने गर्भ में आश्रय देती है और नौ महीने के बाद शिशु को जन्म देकर उस दंपति को सौंप देती है।

इस प्रकार सरोगेट मां वह है जो बच्चे को गर्भ में धारण कर जन्म देती है। दूसरे शब्दों में, सरोगेट मां 'मां' तो है, किंतु बच्चा उसका नहीं है, बच्चे के अभिभावक कोई और हैं। उसकी तो सिर्फ़ कोख है, जो उसने किराये पर दी है, और जिसके बदले में उसे धन प्राप्त होगा।

सरोगेसी व्यवस्था दो प्रकार की होती है:

वाणिज्यिक अथवा व्यावसायिक व्यवस्था

इस व्यवस्था में सरोगेट मां को गर्भावस्था से संबद्ध आवश्यक चिकित्सकीय और स्वास्थ्य संबंधी ख़र्चों के अतिरिक्त पर्याप्त धन का भुगतान किया जाता है। प्राय: इस व्यवस्था में संतानेच्छुक दंपति और सरोगेट मां में कोई जान-पहचान अथवा संबंध नहीं होता और इसी कारण इस व्यवस्था में उन दोनों के बीच में धन स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहता है। संबद्ध आर्ट क्लीनिक तथा विज्ञापन आदि की मद में भी ख़र्चे होते हैं। भारत जैसे निर्धन देश में धन स्वयं में एक बहुत बड़ा लालच है।

परार्थवादी अथवा भावात्मक व्यवस्था

इस व्यवस्था में धन की भूमिका महत्वपूर्ण न होने से ना के बराबर भुगतान होता है। अधिक से अधिक गर्भावस्था से जुड़े आवश्यक ख़र्चों का ही भुगतान सरोगेट मां को किया जाता है। कभी-कभी यह व्यवस्था संतानेच्छुक दंपति के रक्त संबंधी अथवा निकटस्थ मित्र स्त्री के साथ ही की जाती है। वह स्त्री दंपति में से किसी एक की मां, भाभी व बहन हो सकती है।

दूसरे शब्दों में, संतान उत्पन्न करने में अक्षम स्त्री से भावात्मक-रागात्मक संबंध रखने वाली स्त्री उसकी अपूर्णता को पूर्णता में बदलने के लिए अपनी कोख देने को तैयार होती है। तब यह पूर्ण रूप से भावात्मक व्यवस्था बन जाती है।

अधिकतर देशों में व्यावसायिक अथवा परार्थवादी व्यवस्थाओं को परिभाषित नहीं किया गया है। किसी स्पष्ट विभाजक रेखा के अभाव में ऐसा करना संभव भी नहीं है। यह कहना मुश्किल है कि एक व्यवस्था कब दूसरी व्यवस्था में परिवर्तित हो जाए। निकटस्थ मित्र अथवा संबंधी लालच में पड़ कर संतानेच्छुक दंपति को ब्लैकमेल करने लग जाएं या धन मांगने लग जाएं और पूर्णत: व्यावसायिक दृष्टि से संपर्क में आई सरोगेट मां भावात्मक-रागात्मक रुख अख्तियार कर ले। कुछ मामलों में ऐसा देखने में आया है

कि व्यावसायिक तौर पर जुड़ने वाले दोनों पक्ष एक-दूसरे के लिए समर्पित हो गए।

विगत कुछ वर्षों से भारत सरोगेसी के माध्यम से संतान-प्राप्ति के प्रमुख केंद्र के रूप में उभरा है। भारतीय दंपतियों के अतिरिक्त प्रतिवर्ष हज़ारों विदेशी 'अपने बच्चे' की चाह में भारत की ओर खिंचे चले आ रहे हैं, जिससे भारत 'स्वास्थ्य पर्यटन' तथा 'चिकित्सकीय पर्यटन' के बाद उसके एक विकसित प्रतिरूप 'पुनरुत्पादन पर्यटन' के केंद्र के रूप में परिवर्तित हो गया है। आज सरोगेसी 25,000 करोड़ रुपये के व्यापार में परिवर्तित हो गई है तथा आउटसोर्सिंग के इस दौर में गर्भ की आउटसोर्सिंग भारत जैसे विकासशील देश के लिए आय का एक महत्वपूर्ण ज़रिया बन गई है।

इस समय भारत में सरोगेसी व्यवसाय के तीव्रतम रूप में पनपने के अनेक कारण हैं :

- विदेशों में सरोगेट मां की खोज अत्यधिक कठिन है तथा वहां के कानून इस मुद्दे पर अधिक लचीले नहीं हैं। वेटिकन जैसे कुछ देश तो इस व्यवस्था को अप्राकृतिक कृत्य तथा बाल-व्यापार के रूप में देखते हैं वहीं भारत में अनेक आर्ट क्लीनिक न केवल संतानेच्छुक दंपति तथा सरोगेट मांओं के लिए मध्यस्थ का कार्य करते हैं बल्कि गर्भधारण से लेकर बच्चे के जन्म और अधिकारी माता-पिता को उसे सौंपे जाने तक समस्त दायित्व निभाते हैं। यहां का कानून भी इस मामले में पर्याप्त सहूलियत प्रदान करता है। सहायक प्रजनन तकनीकी दिशा-निर्देश के कारण यहां बच्चे को अपने अधिकार में लेते वक़्त आने वाली कानूनी दिक्क़तें काफी कम हैं।
- उन्नत स्वास्थ्य सुविधाओं के मामले में भारत न केवल तीसरी दुनिया के देशों से बहुत बेहतर है बल्कि विकसित देशों को भी टक्कर देने में सक्षम है। यहां अंग्रेज़ी में दक्ष तथा उच्च प्रशिक्षित चिकित्सकों के अतिरिक्त कुशल तथा सेवाभावी नर्सिंग स्टाफ की बहुलता है। अत्याधुनिक तकनीक एवं उपकरणों से लैस आईवीएफ एवं आर्ट क्लीनिक विदेशी मापदंडों पर पूर्ण रूप से खरे उतरते हैं।
- जनबहुलता, विशेषकर युवा जन की बहुलता इस व्यवसाय के लिए उर्वर भूमि उपलब्ध कराती है। स्वाभाविक रूप से प्रजनन की दृष्टि से स्वस्थ स्त्रियां पर्याप्त संख्या में इस कार्य के लिए उपलब्ध हैं। इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि सरोगेसी के लिए प्रस्तुत वर्ग प्रमुख रूप से उस निम्न मध्य वर्ग से जुड़ा है जो दिन-रात भूख से संघर्षरत है। ऐसे में उनके 5-10 वर्षों की सकल आय के बराबर प्राप्त एकमुश्त धन के लोभ का संवरण वे नहीं कर पाते।
- भावनात्मक दृष्टि से भी अनेक विदेशी भारतीय सरोगेट मां के माध्यम से ही संतान चाहते है। विशेषज्ञ इसे भारत की आध्यात्मिक संस्कृति के साथ-साथ भारतीय मां की मन:स्थिति से भी जोड़कर देखते हैं। भारतीय स्त्रियां यद्यपि अपनी निर्धनता और पारिवारिक-सामाजिक मज़बूरियों के कारण कोख किराये पर देने की क़ीमत अवश्य लेती हैं परंतु किसी सूनी गोद को किलकारी से भरने का आत्मिक सुकून भी उन्हें अनुभव होता है। खुशियों से दूसरों का आंचल भरने की यह संतुष्टि भावना भारतीयों में ही होती है। भारत में मातृत्व को पूर्णता तथा बांझपन को अभिशाप के रूप में देखा जाता रहा है। अत: दूसरों को मातृत्व सुख प्रदान करना एक स्त्री को प्रसन्नता और संतोष से भर देता है। 9 माह अपने गर्भ में रखने वाली मां बच्चे की मन:स्थिति को पूरी तरह से प्रभावित कर बच्चे के आने वाले जीवन की रूपरेखा तैयार करती है। यहां तक कि कुछ हिंदू दंपति सरोगेट मांओं को गीता का पाठ करने को कहते हैं, जिससे बच्चे पर अच्छा असर पड़े।
- भारत में इस व्यवसाय के लोकप्रिय होने का सर्वप्रमुख कारण इस प्रक्रिया का तुलनात्मक रूप से सस्ता होना है। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार भारत में सरोगेसी के लिए एक लाख से चार लाख रुपये के मध्य ख़र्च होता है, जबकि अमरीका जैसे देशों में यह ख़र्च 16 लाख रुपये तक आता है।

जो भी हो, दोनों पक्षों की अधिकतम संतुष्टि के बाज़ार के नियम के अनुसार ही यह व्यवस्था भारत में पनपने और बढ़ने में कामयाब हो सकी है।

प्रश्न उठता है कि इस पूरी व्यवस्था के केंद्र बिंदु के रूप में जो शिशु है, जिसकी चाह में इस संपूर्ण व्यवस्था का विकास हुआ है, उसके हितों और अधिकारों का ध्यान कितना और कहां तक रखा जा रहा है? कई बार सरोगेसी व्यवस्था, इस माध्यम से उत्पन्न बच्चे के शोषण का माध्यम बनती दिखाई देती है।

चूंकि वर्तमान में सरोगेसी के असीमित विकास के मूल में धन है, अत: स्वाभाविक रूप से अनेक प्रश्न विविध मुद्दों और समस्याओं के रूप में आ खड़े होते हैं जिनमें से कुछ मुख्य मुद्दे नीचे दिए जा रहे हैं :

- सर्वप्रथम तो यह कि बच्चे की वास्तविक मां किसे माना जाए? सबसे पहले बच्चे की इच्छा करने वाली स्त्री को, जैसाकि भारत में माना जाता है अथवा जन्म देने वाली अर्थात सरोगेट मां को, जैसाकि कुछ अन्य देश मानते हैं। इसी संदर्भ में एक प्रश्न यह भी उठता है कि क्या किसी बच्चे को जन्म देना, उसकी इच्छा करने की तुलना में कमतर कार्य है?
- चूंकि सरोगेसी में धन का लेन-देन अकेला बड़ा मुद्दा है तो यह भी संभव है कि सरोगेट मां उस शिशु को अपने गर्भ में उस शिद्दत और भावना के साथ न पाले जैसा 'अपने' शिशु को पालती है। निस्संदेह मां की यह मन:स्थिति शिशु के भावी जीवन को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती है।
- नवजात को मां के पोषक दूध से वंचित करना उसके प्राथमिक अधिकार का हनन है जोकि नवजात के असंतुलित शारीरिक-मानसिक विकास का कारण बन सकता है।
- यदि बच्चा किसी गंभीर बीमारी से ग्रस्त हो, विकलांग हो अथवा बदसूरत और संतानेच्छुक दंपति के इच्छानुसार लिंग का न हो तो ऐसी स्थिति में यदि वे उस बच्चे को न लेना चाहें और यदि सरोगेट मां भी उसे स्वीकार न करे तो बच्चे के क्या अधिकार होंगे?
- कई बार एड्स आदि के मरीज अपने युग्मक देकर सरोगेसी अपनाते हैं जो सरोगेट मां के साथ-साथ इस प्रक्रिया से जन्मे बच्चे के लिए भी घातक हो सकता है।
- चूंकि शिशु के पास माता-पिता के चयन का अधिकार नहीं होता है अत: उसका भावी अस्तित्व दुधारी तलवार की भांति हो सकता है।
- बड़े होने पर इस अपारंपरिक व्यवस्था से उत्पन्न बच्चे की मानसिकता क्या होगी?

– यदि सरोगेसी प्रसंग के बाद दंपति का स्वयं का बच्चा हो जाता है तो सरोगेसी प्रक्रिया से उत्पन्न बच्चे के प्रति उनका व्यवहार कैसा होगा?
– विशेषज्ञों की एक धारणा यह भी है कि क्योंकि सरोगेसी के माध्यम से उत्पन्न हुए बच्चे से अधिकारी माता-पिता का भावनात्मक लगाव ज्यादा नहीं होता अत: ऐसे बच्चों का प्रयोग आतंककारी गतिविधियों, देह व्यापार तथा अनैतिक जेनेटिक इंजीनियरिंग से जुड़े अनुसंधानों इत्यादि में भी किया जा सकता है। पूर्व योजना से भी इन उद्देश्यों के लिए सरोगेसी व्यवस्था को चुना जा सकता है।
– कभी-कभी 60 वर्ष व इससे अधिक के स्त्री-पुरुष इस माध्यम से माता-पिता बन जाते हैं, बिना यह सोचे कि उनके बाद उस बच्चे का भविष्य क्या होगा? ऐसी स्थिति में बच्चे के हित सर्वोपरि नहीं रह पाते। विशेष रूप से आजकल के व्यावसायिक दौर में, जबकि अनेक युगल व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा और तरक्क़ी की दौड़ में अपनी आयु का महत्वपूर्ण पड़ाव पीछे छोड़ देते हैं तथा जब व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा और तरक्क़ी का प्रभाव कम होता है तब बाद में अपने भविष्य के सहारे की योजना सरोगेसी के माध्यम से शिशु के रूप में करते हैं। ऐसी स्थिति में शिशु की स्थिति कुछ वर्षों उपरांत घरेलू नौकर से ज्यादा में नहीं होगी।
– एक अन्य महत्त्वपूर्ण मुद्दा बच्चे की राष्ट्रीयता से जुड़ा है। क्योंकि अनेक मामलों में संतानेच्छुक दंपति भारत के बाहर के होते हैं, अत: शिशु की राष्ट्रीयता का प्रश्न बड़ी समस्या के रूप में उभर कर आ रहा है।

दो वर्ष पूर्व के एक मामले में एक ब्रिटिश दंपति को भारतीय सरोगेट मां से जन्मे जुड़वां बच्चों के जन्म के बाद उनकी राष्ट्रीयता को लेकर भारत में 3 माह तक कानूनी लड़ाइयों से उलझना पड़ा क्योंकि भारतीय कानून के अनुसार वे अपने जुड़वां बच्चों के अभिभावक हैं, जबकि ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा सरोगेट मां को उन बच्चों का अभिभावक माना गया। इसी प्रकार एक इस्राइली 'गे' व्यक्ति को अपने जुड़वां बच्चों की इस्राइली नागरिकता के लिए लंबे समय तक संघर्ष करना पड़ा।

राष्ट्रीयता का मुद्दा और भी जटिल हो जाता है जब भारतीय सरोगेट से संतान की इच्छा करने वाला व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) एक देश का हो और अंडाणु तथा शुक्राणु दाता (स्त्री या पुरुष) किसी भिन्न देश का। इस स्थिति में बच्चे से उसके जैविक असंबंध के कारण पेचीदगियां और बढ़ती हैं। साथ ही यह नैतिक सवाल तो अपनी जगह है ही कि क्यों न ऐसी स्थिति में सरोगेसी अपनाने के स्थान पर किसी अनाथ बच्चे को गोद ले लिया जाए। विश्व के अनाथालय अनाथ बच्चों से भरे पड़े हैं और बड़ी संख्या में तो बच्चे अनाथालय में भी नहीं पहुंच पाते। ऐसे में सरोगेट स्त्रियों को भुगतान कर पेचीदी प्रक्रिया के द्वारा बच्चे पाने के स्थान पर अवांछित और अनाथ बच्चों को गोद ले लिया जाए तो उनके बेहतर घर और जीवन स्तर पाने के अधिकार की रक्षा हो सकेगी।

इस प्रकार उपभोक्तावाद और बाज़ारीकरण के इस दौर में सब कुछ ख़रीदे जा सकने की मानसिकता प्रकट हो रही है। इसी कारण मातृत्व और बाल्यत्व जैसे पवित्र भावों को भी वस्तु तथा उत्पाद के रूप में देखा जा रहा है और राज्य तथा नागरिकता विहीन बच्चे उत्पादित किए जा रहे हैं।

निश्चित रूप से भारत सरकार सहित सभी राज्य सरकारों, सरकारी-गैर-सरकारी संस्थाओं तथा संबद्ध एजेंसियों तथा आर्ट क्लीनिकों द्वारा पूरी प्रक्रिया के विविध पहलुओं की गहन पड़ताल कर भविष्य में इस व्यवस्था की अनुमति दी जाए। भावात्मक सरोगेसी तो एक हद तक स्वीकार्य हो सकती है, परंतु व्यावसायिक सरोगेसी की स्वीकार्यता भावी शिशु के समक्ष अनेक प्रश्नचिह्न खड़े कर सकती है। ❑

(लेखिका दयानंद महाविद्यालय, अजमेर में इतिहास विभाग की अध्यक्ष हैं।
ई-मेल : dr_pratibha_pandey@yahoo.com)

सदस्यता कूपन

नयी सदस्यता / नवीकरण / पता बदलने के लिए (जो लागू होता हो उस पर '✓' का चिह्न लगाएं।)

मैं ..... (पत्रिका का नाम एवं भाषा) का ❑ वार्षिक (100 रुपये) ❑ द्विवार्षिक (180 रुपये) ❑ त्रिवार्षिक (250 रुपये) सदस्य बनने का इच्छुक हूं। डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर संख्या ..... तारीख .....

नाम .....

वर्ग ❑ विद्यार्थी ❑ शिक्षक ❑ संस्था ❑ अन्य

पता :.....

.....

पिन .....

नवीकरण/पता बदलने के लिए कृपया अपनी सदस्य संख्या यहां लिखें :.....

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर ***अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग*** के नाम से बनवाएं और कूपन के साथ इस पते पर भेजें :

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड-IV, सातवां तल, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

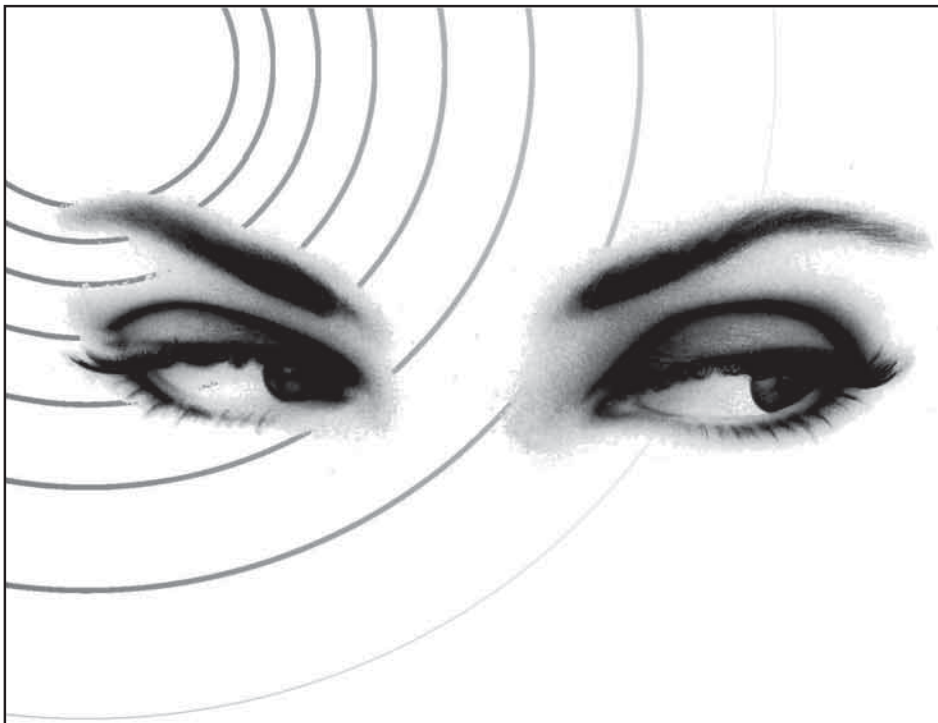

WO

GlaucomaisaleadingcauseofirreversibleblindnessinIn

WarningS ignsare:

- Unusualheadacheoreyeache
- Frequentchangeofreadingglasses
- Coloredring s/halos aroundlights
- SuddenlossofV isionwithrednessofeyes
- Restrictioninfieldof vision

Intheeventofanysuchsymptomsgetyoureyepressure,opticnerve
Beware!Youcouldbeaffectedifyouhaveanyofthefollowing:

- Arelativewithglaucoma
- Diabetes
- Hypertension
- Usingsteroidsfor Allergies,Asthma,Skindiseases etc.

For further information, contact: Nearest Primary Health Centre, Go

NationalProgrammeforControlofBlindne
DirectorateGeneralofHealthServices
Website:www-moh

RLDGLAUCOMADAY

12th March,2011

dia

NormalVision

GlaucomaVision

sandvisualfieldexamined.

vt. Hospital, Medical College and NPCB's NGO Hospital

ess,MinistryofHealth&FamilyW elfare
,NirmanBhawan,NewDelhi-1 10108
fw.nic.in/npcb.nic.in

NATIONAL RURAL HEALTH MISSION

YH-04/11/8

भारत में मानवाधिकार संरक्षण

● ***मानवाधिकार की प्रथम वैश्विक अभिव्यक्ति कब हुई थी?***

मानवाधिकार की प्रथम वैश्विक अभिव्यक्ति, द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के तुरंत बाद सन् 1940 में संयुक्त राष्ट्र साधारण सभा में अंगीकृत 'सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा-पत्र' (यूनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स) के रूप में हुई थी। इस घोषणा-पत्र में यह स्वीकार किया गया है कि कुछ अधिकार मनुष्य को जन्म से ही प्राप्त होते हैं। विश्व में न्याय और शांति तभी स्थापित हो सकती है, जब सभी लोगों के मानवीय सम्मान का आदर किया जाए। उसके प्रति अनादर से ही मानव जाति की अंतरात्मा को चोट पहुंचती है। घोषणा-पत्र में भाषण व विश्वास की स्वतंत्रता तथा दुख और अभाव से मुक्ति को लोगों की सर्वोच्च अभिलाषा के रूप में मान्यता दी गई है। घोषणा-पत्र में 30 अनुच्छेद हैं जिनका विस्तार बाद में हुई अंतरराष्ट्रीय संधियों, क्षेत्रीय मानवाधिकार व्यवस्था, राष्ट्रीय संविधानों और कानूनों में हुआ है। सार्वभौमिक मानवाधिकार विधेयक, अंतरराष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार संधि और अंतरराष्ट्रीय नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार संधि और उसके दो समझौतों ने सन 1976 में अंतरराष्ट्रीय कानून का रूप ले लिया है। तदुपरांत वर्ष 1993 में वियना घोषणा-पत्र और कार्ययोजना को अपनाया गया। इस घोषणा-पत्र में लोकतंत्र, आर्थिक विकास और मानवाधिकारों की अंतरनिर्भरता को स्थापित किया; अधिकारों के अविभाज्य अंतरनिर्भर और परस्पर संबंधित होने की अवधारणा को जन्म दिया और संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार उच्चायुक्त के पद के सृजन का मार्ग प्रशस्त किया। वियना घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले देशों में भारत भी शामिल है।

● ***भारत में मानवाधिकारों के संरक्षण का मुख्य सैद्धांतिक आधार क्या है?***

भारत में मानवाधिकारों के संरक्षण का मुख्य सैद्धांतिक आधार सन् 1993 के मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम में निहित है। यह कानून संविधान की धारा 51 के अंतर्गत दिए गए निर्देशों के अनुकरण में और वियना सम्मेलन में दिए गए भारत के वचन को ध्यान में रखते हुए बनाया गया है। इस कानून में मानवाधिकारों की परिभाषा को भारतीय संविधान में प्राप्त स्वतंत्रता, समानता और व्यक्तिगत सम्मान से जुड़े अधिकारों तथा अंतरराष्ट्रीय संधियों (संयुक्त राष्ट्र महासभा में 16 दिसंबर, 1966 को पारित अंतरराष्ट्रीय नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार संधि और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार संधि) के अनुसार की गई है और भारत के न्यायालयों में इसे लागू कराया जा सकता है।

अधिनियम में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्यों में राज्य मानवाधिकार आयोग और मानवाधिकार न्यायालय स्थापित करने का प्रावधान किया गया है ताकि मानवाधिकारों और इनसे जुड़े मामलों को बेहतर ढंग से संरक्षण प्रदान किया जा सके।

● ***अधिनियम में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को कौन-से कार्य सौंपे गए हैं?***

अधिनियम के अनुसार आयोग को जो कार्य सौंपे गए हैं हैं किसी भी लोक सेवक द्वारा किसी भी व्यक्ति के मानवाधिकारों के उल्लंघन अथवा इस प्रकार के उल्लंघन को प्रोत्साहित करना अथवा उसको रोकने में उदासीनता बरतने की शिकायत की जांच करना, न्यायालय में उसकी अनुमति से मानवाधिकारों के उल्लंघन के किसी आरोप से संबंधित कार्यवाही में हस्तक्षेप करना, बंदी बनाकर रखे जाने वाले राज्य सरकार के किसी भी कारागार अथवा संस्था का निरीक्षण हेतु भ्रमण कर बंदी व्यक्तियों के साथ किए जा रहे व्यवहार, उपचार, सुधार अथवा संरक्षण के उपायों का अध्ययन कर उनके बारे में समुचित सुझाव देना, संविधान अथवा किसी कानून के तहत मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु प्रदत्त सुरक्षा उपायों की समीक्षा करना है और उनके प्रभावी क्रियान्वयन हेतु सुझाव देना, आतंकवाद के क्रियाकलापों सहित उन सभी कारकों की समीक्षा करना जो मानवाधिकारों के उपभोग को प्रतिबंधित करते हैं और निदान कारक उपयुक्त सुझाव देना, मानवाधिकारों से संबंधित अंतरराष्ट्रीय संधियों और अन्य व्यवस्थाओं का अध्ययन कर उनके प्रभावी क्रियान्वयन हेतु सुझाव देना, मानवाधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान करना और उसको बढ़ावा देना, समाज के विभिन्न वर्गों में मानवाधिकारों के बारे में जागरुकता फैलाना और मीडिया में प्रकाशन, संगोष्ठियों और अन्य उपलब्ध साधनों के माध्यम से मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए उपलब्ध सुरक्षा उपायों का प्रचार-प्रसार करना, मानवाधिकारों के क्षेत्र में लगी गैर-सरकारी संस्थाओं और संगठनों के प्रयासों को प्रोत्साहित करना, मानवाधिकारों के संवर्धन हेतु आवश्यक समझे जाने वाले इस प्रकार के अन्य कार्यों को हाथ में लेना।

● ***मानवाधिकार न्यायालयों की स्थापना का क्या उद्देश्य है?***

मानवाधिकार न्यायालयों की स्थापना, मानवाधिकारों के उल्लंघन से उपजे अपराधों की त्वरित सुनवाई करने के लिए की गई है। अधिनियम के अनुसार, राज्य सरकारें, राज्य के उच्च न्यायालय की अनुमति से इस प्रकार के

(शेषांश पृष्ठ 36 पर)

विशिष्ट समूहों के मानवाधिकार

● सुनील

आदिवासी यानी आदिकाल से रहने वाले मूल निवासी! पिछले दिनों सर्वोच्च न्यायालय ने एक फ़ैसले में इस बात को दोहराया है कि आर्यों और द्रविड़ों से भी पहले आदिवासी समूह इस भारत भूमि पर रहते थे। उन्हें छोड़कर बाकी सब यहां बाहर से आकर बसे, चाहे हज़ारों साल पहले क्यों न बसें हो। विडंबना यह है कि इस भूमि के सबसे पुराने मूल निवासी ही सबसे ज्यादा शक्तिहीन, भूमिहीन, बेघर, वंचित, दलित और ग़रीब है। आधुनिक विकास के यज्ञ में सबसे ज्यादा बलि उनकी ज़िंदगियों की ही चढ़ी है और आधुनिक सत्ता-प्रशासन की संवेदन शून्यता, दमन, शोषण व भ्रष्टाचार के शिकार भी वे सबसे ज्यादा हुए है। कोई अचरज़ की बात नहीं है कि देश के आदिवासी इलाकों में माओवादी हिंसा की आग धधक उठी है। वैसे कई जगह और कई मौकों पर वे लोकतांत्रिक तरीकों से भी आवाज़ उठाते रहे हैं तथा कई बार अपने को असहाय पाकर उन्होंने नियति को चुपचाप मंजूर भी कर लिया है। आदिवासियों की यह हालत भारतीय लोकतंत्र पर एक गहरा प्रश्नचिह्न खड़ा करती है।

इतिहास इस बात का गवाह है कि जब प्लासी की लड़ाई में सिराजुद्दौला की हार के साथ ही भारत के ऊपर अंग्रेज़ों की सत्ता क़ायम होने का रास्ता साफ हो गया था, उन्हें पहली सशक्त चुनौती भारत के जंगलों में आदिवासियों के प्रतिरोध से ही मिली। सन् 1857 के काफी पहले आदिवासियों के विद्रोह शुरू हो गए थे। सन् 1857 में भी और बाद में महात्मा गांधी के नेतृत्व में आज़ादी के आंदोलन में भी उनकी ज़ोरदार भागीदारी रही, भले ही इतिहास की क़िताबों में उसे ठीक से दर्ज़ न किया गया हो। देश आज़ाद होने के बाद समता, विविधता और समरसता पर आधारित एक नये भारत के निर्माण का मौका आया, जिसमें औपनिवेशिक काल के अन्यायों का निराकरण हो सकता था। भारत के संविधान निर्माताओं ने भी संविधान के अंदर आदिवासियों के हितों के संरक्षण और संवर्धन के प्रावधान करने की कोशिश की, किंतु अन्य कई मामलों की तरह इसमें भी भारतीय जनता के साथ न्याय नहीं हो पाया। संविधान की मूल भावना और इसके महान लक्ष्यों की धज्जियां उड़ती रहीं।

आज़ादी मिलने के बाद पहली बड़ी घटना बस्तर के राजा प्रवीरचंद भंजदेव की पुलिस द्वारा हत्या थी, जिसने आगे की घटनाओं का संकेत दे दिया था। भंजदेव आदिवासी नहीं थे, लेकिन वे आदिवासियों के राजा थे और यह आंदोलन पूरी तरह आदिवासियों का ही था। बाद की फर्ज़ी मुठभेड़ों का यह संभवत: पूर्वाभास था। उधर पश्चिम की नकल पर चली विकास योजनाओं में भी सबसे ज्यादा आदिवासियों का ही आशियाना उज़ड़ा। बड़े बांध हों या कारखाने- 'आधुनिक भारत के मंदिरों' की बुनियाद आदिवासियों और जंगलों के विनाश पर ही रखी गई। भिलाई, बोकारो या राउरकेला- सब आदिवासियों की ज़मीन पर बने। आज भी उनके आसपास रहने वाले आदिवासी कंगाल, कुपोषित, वंचित और फटेहाल हैं। आधुनिक विकास की इन विसंगतियों के भली-भांति सामने आने के बाद भी उस पर गंभीरता व ईमानदारी से पुनर्विचार की प्रक्रिया अभी तक शुरू नहीं हुई है। बल्कि वैश्वीकरण के मौजूदा दौर में विकास के नाम पर आदिवासी जीवन पर हमला बढ़ गया है।

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को और प्रांतों में उनके प्रतिनिधि के रूप में राज्यपालों को अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण के लिए विशेष शक्तियां और जिम्मेदारी दी गई थीं। वे चाहें तो आदिवासी इलाक़ों में किसी भी कानून या योजना के क्रियान्वयन को रोक सकते हैं। लेकिन स्वतंत्र भारत में आज तक एक बार भी राष्ट्रपति या किसी राज्यपाल ने आदिवासियों के हित में इन शक्तियों का प्रयोग नहीं किया। भूरिया समिति की रपट के आधार पर बने पेसा कानून का क्रियान्वयन से ज्यादा उल्लंघन होता रहा है। छत्तीसगढ़ सरकार ने तो सरगुजा ज़िले में एक ग्राम सभा द्वारा बिज़ली कारखाने के लिए ज़मीन देने से इंकार करने पर उस गांव को नगर में बदलने का क़माल कर दिया, ताकि पेसा कानून आड़े नहीं आए। आदिवासी इलाक़ों की ग्राम सभा या जनसुनवाई को हमारे नौकरशाह तिलभर महत्व देने के काबिल नहीं समझते हैं। कमोबेश यही हाल दो वर्ष पहले संसद में पारित वन अधिकार कानून का भी हो रहा है।

डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा के रूप में भारत के अनुसूचित जातियों व जनजातियों के आयुक्त की उनचालीसवीं रपट एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है जिसने हालातों का विस्तार से ज़ायज़ा लिया था तथा सुझाव भी दिए थे। किंतु यह रपट अलमारियों में रखी धूल खा रही है। उधर डॉ.शर्मा सेवानिवृत्ति के बाद खुद मैदान में कूद

पड़े तो जगदलपुर में सत्ता व कंपनियों के दलालों द्वारा उनके कपड़े फाड़ फज़ीहत की गई।

आज़ाद भारत में आदिवासियों के उत्पीड़न का एक बड़ा स्रोत वन कानून, वन प्रबंधन और वन नीति रही है। अंग्रेज़ों द्वारा भारतीय जंगलों पर क़ब्ज़ा करने, व्यावसायिक दोहन तथा आदिवासियों का अधिकार ख़त्म करने के हिसाब से बने कानूनों व नीति को आज़ाद भारत में भी ज़ारी रखा गया। विश्व बैंक और अन्य विदेशी सहायता ने भी इसी को पुष्ट किया। इसकी मूल मान्यता है कि जंगलों में आदिवासियों की उपस्थिति ही जंगल व जंगली जानवरों के नाश का कारण है, इसलिए उनको हटाया जाए या उनके द्वारा जंगल उपयोग को रोका जाए। हम भूल गए कि जंगल, जंगली जानवरों और आदिवासियों का सह-अस्तित्व हज़ारों साल से रहा है। उनको अलग किया तो न जंगल बचेंगे और न आदिवासी। हमने शेरों और हाथियों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय उद्यान व अभयारण्य तो बनाए लेकिन यह भूल गए कि आदिवासियों के संरक्षण की भी ज़रूरत है और जंगल व जंगली जानवरों के नाश के दोषी आदिवासी नहीं, खुद औपनिवेशिक व आज़ाद सरकारों की नीतियां रही हैं। क़रीब 50 हज़ार शेरों और लाखों वन्य प्राणियों का शिकार तो आज़ादी के पहले के सौ वर्षों में अंग्रेज़ अफसरों व नवाबों-राजाओं द्वारा हुआ है। गुनाह किसी का और सज़ा किसी और को! आदिवासियों के साथ यह अन्याय और साम्राज्यवादी सलूक आज भी जारी है।

आदिवासियों के अपने विशिष्ट धर्म, रीति-रिवाज़, भाषा, संस्कृति और पहचान भी लगातार हमले का शिकार हो रहे हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 350क में स्पष्ट निर्देश था कि प्रत्येक राज्य और उस राज्य के अंतर्गत प्रत्येक स्थानीय सत्ता भाषायी अल्पसंख्यक समूहों के बच्चों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधा जुटाएगी। किंतु आज तक आदिवासी बच्चों को उनकी अपनी भाषाओं में शिक्षा देने की व्यवस्था नहीं की गई है। आदिवासी भाषाएं गहरे संकट में हैं और ख़त्म हो रही हैं और एक भाषा के साथ एक समुदाय की संस्कृति, पहचान, इतिहास और आत्मविश्वास जुड़े होते है जिन पर संकट आता है।

यदि भारतीय लोकतंत्र को सही मायने में सार्थक और भागीदारी वाला बनाना है तो इसके ढांचे, इसकी शैली और इसके अमल को बुनियादी रूप से बदलना ज़रूरी हो गया है। भारतीय जनता के सबसे नीचे के पायदान पर स्थित आदिवासियों का क्या होता है यह इसकी असली परीक्षा होगी। इसके लिए राजधानियों के वातानुकूलित भवनों में अफसरों-नेताओं-कंपनियों द्वारा लिए जाने वाले फ़ैसलों को रोककर, गांव-जंगलों में रहने वाले लोगों को अपने फ़ैसले लेने का अधिकार देना पड़ेगा। इसके लिए मौजूदा पंचायती राज नाकाफ़ी है। भारत की केंद्रीकृत सत्ता और अफसरशाही के ढांचे को तोड़कर, प्रशासनिक ढांचे को बुनियादी रूप से बदलकर, मौजूदा कानूनों व नीतियों की गहरी समीक्षा करके, विकास के मौजूदा मॉडल को भी बदलना पड़ेगा। भारतीय लोकतंत्र के छह दशक पूरे होने के बाद भी यदि सबसे पुराने धरती-पुत्र असंतुष्ट, बैचेन व संकटग्रस्त है तो इसकी गंभीर समीक्षा व बुनियादी बदलाव का वक़्त आ गया है।

(लेखक समाजवादी जनपरिषद के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष और आदिवासी इलाक़ों में सक्रिय कार्यकर्ता हैं।)

ई-मेल : sjpsunil@gmail.com)

Classic IAS ACADEMY™

SHAPING TALENT

Batches for

PRE-CUM-MAINS

Starting on 20th June, 11th July, 11th Aug., 2011

(ENGLISH & हिन्दी माध्यम)

Optional Subjects : History, Geography, Pol Science, Sociology, Public Adm.

Special Features

1. Assignment based teaching in hi-tech class rooms
2. Fortnightly test and discussion
3. Surprise test any time any day
4. Answer writing practice
5. Free guidance on Essay writing,Hindi and English language paper
6. Demo classes are available for every batch
7. Fee in Instalments

Special Attraction

a) Candidates belonging to SC, ST and handicapped shall be entitled to 20% fee concession.
b) All the candidates from rural areas shall be entitled to 15% fee concession
c) Candidates from OBC and minority category shall be entitled to 15% fee concession
d) The urban students below the poverty line shall be entitled to 10% fee concession

"TALENTED STUDENTS MAY BE GRANTED 100% FEE CONCESSION"

Correspondence Course also available in Both Medium

For More Information & Enquiry

CLASSIC IAS ACADEMY

UG-33 & 34, Ansal Chamber-I, Bhikaji Cama Place, New Delhi-66
Ph. : 32323293, 32323294 Mobile : 9310034050, 9310034060
Web : www.classiciasacademy.com
Email: enquiry@classiciasacademy.com, helpdesk@classiciasacademy.com

YH-4/11/4

समाजीकरण और बहुलता की स्वीकृति ज़रूरी

● सरोज कुमार शुक्ल

आधुनिक हों या पुरातनपंथी, हर किस्म की दकियानूसी धारणाओं से दूर, सत्य के प्रति आदर, अहिंसा, विश्व मैत्री और समुदायगत समरसता के आधार पर ही मानव अधिकारों की नयी संकल्पना संभव है। कोई भी मूल्यों से अनुप्राणित विचारधारा यह कभी नहीं चाहेगी कि मनुष्य अपने मनुष्यगत गुणों को अपनी विवेक दृष्टि के बजाय किसी अन्य संस्था, व्यक्ति या उन समूहों में तलाशे जो अन्य तरह के आधार पर टिके हैं। ऐसी कोई भी कोशिश उस विचारधारा को मनुष्य का घोर विरोधी बना देती है।

उल्लेखनीय है कि सत्य, समय और काल पर किसी का एकाधिकार नहीं है। संसार की संपूर्ण क्रियाएं इन्हीं के द्वारा और इन्हीं के परिप्रेक्ष्य में संचालित होती हैं। मानव अधिकार व्यक्ति को न केवल जीने का उत्साह देते हैं वरन उस उत्साह में और अधिक संवेदना लाने में मददगार होते हैं। यह भी माना जाता है कि सामाजिकता जहां एक ओर इंसान को जवाबदेह एवं न्याय के अनुकूल आचरण का साहस देती है, वहीं दूसरी ओर उसे उसमें दीक्षित होने का आह्वान भी करती है। इसमें ऐसा संकल्प निहित होता है जो भीतर की निजता एवं ओछेपन को जलाकर भस्म कर देता है।

परस्पर साझेदारी से जहां एक ओर हमारी सजग व सतर्क उपस्थिति संभव होती है वहीं दूसरी ओर इनमें हमें भविष्य में आने वाली आपदाओं से लड़ने की शक्ति भी मिलती है। मानव अधिकारों के उपक्रम का मुख्य प्रतिपाद्य इंसान की गरिमा को बनाए रखने के साथ-साथ मनुष्यता की वास्तविक पहचान से रू-ब-रू कराना भी है। कहा जा सकता है कि परपीड़ा और परदुख-कातरता का समन्वय मानव अधिकारों का प्राण है। मानव अधिकार की अवधारणा हमें यह भी संदेश देती है कि हमें इंसानियत के मर्म तथा करुणा की शक्ति को समझना चाहिए क्योंकि ये दोनों ऐसे महत्वपूर्ण स्तंभ हैं जो संपूर्ण विश्व की मानवता को प्रभावित कर सकते हैं। जिस दिन हम इस विचार को अपने भीतर समाहित कर लेंगे उस दिन से हमारे भीतर इंसानियत के साथ जुड़ने तथा न्याय करने की साहस देने वाली प्रथम पाठशाला का जन्म अपने आप हो जाएगा।

भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात करें तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि यह देश एक विशाल मानव संयुक्त रहा है। यहां पर शक, हूण, किरात, पारसी, मुसलमान– न जाने कितनी जातियां-प्रजातियां आती रही हैं। ये सभी समाज में घुलते-मिलते रहे और सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग बन गए तथा उसे समृद्ध किया। उसके परिणामस्वरूप जिस विशिष्ट समाज का ढांचा उभर कर खड़ा हुआ उसमें विविधताएं आईं पर समय के साथ-साथ उनके रंग-रूप में बहुत-से बदलाव भी आए। बहुत सारी प्रथाएं एक समाज से दूसरे समाज में आईं और उन्हें यथोचित समादर भी मिला।

आज देश के सामने उभरती समस्याओं के बीच सबसे बड़ी समस्या पारस्परिक सद्भाव की कमी है। इस कमी के कारण लोगों का एक-दूसरे पर भरोसा कम होने लगा है और संदेह की खाई गहराती गई। परंतु आज भी ऐसे अवसर दिख जाते हैं जब किसी दरगाह या फकीर-पीर की मज़ार पर या किसी सिद्ध के स्थान पर सभी बिरादरियों के लोग बिना किसी धार्मिक भेदभाव के एक साथ मिलकर उत्सव में शामिल होते हैं। जीने की और सुखी जीवन जीने की इच्छा और स्पृहा सबमें एक ही तरह की है। मनुष्य के जीवन पर गौर करें तो यह सरलता से स्पष्ट हो जाता है। वह अकेले अपने आप में अधूरा और अपर्याप्त होता है। हम जिन चीज़ों का उपयोग करते हैं उनका निर्माण किसी एक व्यक्ति के प्रयास की उपलब्धि नहीं होती।

आपसी सौहार्द व्यक्ति के समाजीकरण और उसकी अस्मिता के निर्माण के लिए भी आवश्यक है। बच्चे जीवन और समाज के मूल्य परिवार, समुदाय और विद्यालय जैसी सामाजिक संस्थाओं में रह कर सीखते हैं। यह तथ्य इस ओर संकेत करता है कि हम दूसरे लोगों के ऋणी हैं। पितृ ऋण, गुरु ऋण और ऋषि ऋण भारत में प्राचीन काल से ही जाने जाते हैं। यदि हमारे गुरुजन हमारे जीवन के लिए इतना कुछ करते हैं तो हमारा यह सहज कर्तव्य बनता है कि उनकी रक्षा करें। दूसरे शब्दों में, परस्पर-निर्भरता हमारे जीवन का मूल मंत्र है। यह वह प्रक्रिया है जो जीवन को संभव बनाती है और उसे संचालित-संपोषित करती है।

आज के समय में पारस्परिकता तेज़ी से घटती जा रही है। लोग सामाजिक जीवन में

सहज रुचि नहीं लेते। हमें यह देखना चाहिए कि हज़ारों वर्षों से चली आ रही परंपरा जिस पारस्परिक नज़रिये की बात करती है उसके क्या आधार रहे हैं। यह तो निश्चित है कि दो भिन्न धार्मिक आचरणों के बीच अंतर होगा। लोगों की जीवन पद्धति अलग-अलग हो सकती है, उनकी उपासना पद्धति अलग-अलग हो सकती है, उनके वैवाहिक और उत्तराधिकार के नियम और व्यवस्थाएं अलग-अलग हो सकती हैं। इस भिन्नता को स्वीकार कर ये संबंध बनते और टिकते थे। यह आचर्श्य और खेद की बात है कि जिस दौरान भिन्न समुदायों के बीच परस्पर रोटी-बेटी के रिश्ते कड़ाई से वर्जित थे और उन्हें कोई नैतिक, सामाजिक, प्रशासनिक या कानूनी स्वीकृति नहीं प्राप्त थी उस समय भी परस्पर सद्भाव काफी हद तक सहज और स्वाभाविक था। वह किसी चर्चा या आंदोलन का विषय नहीं था। यदि हम मध्यकाल के संतों की वाणियों पर नज़र डालें तो यह देखने को मिलता है कि उनके उपदेश हिंदू और तुर्क में परस्पर सद्भाव और भावनात्मक, आध्यात्मिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर एकता को सुदृढ़ करते दिखाई पड़ते हैं। कबीर, रैदास, अकबर, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद जैसे जाने कितने मनीषी विभिन्न धर्मों से उत्पन्न भेदभाव और इसके अलगाववादी परिणामों को दूर करने में आजीवन संलग्न रहे। ये सभी मानते थे कि ईश्वर किसी एक वाद या धर्म का नहीं होता। वह एक है और उसका प्रकाश बहुरंगी है। वह एक अनेक की कामना करता है – *एकोहं बहुस्याम:*। ईश्वर को हम अनेक तरह से देखते-समझते हैं : *एकं सद् बहुधा विप्रा: वदन्ति*।

किंतु आज जब हमने समुदायों के अपने नियमों को कानून से तोड़ दिया है और रहन-सहन या रिश्तों के सिद्धांतों को व्यक्ति स्वातंत्र्य के आधार पर परिभाषित करने लगे हैं तब से समुदायों के बीच परस्पर सौहार्द कुछ ऐसी न पकड़ में आने वाली मृग-मरीचिका बनकर रह गई है जिसे पकड़ रखना और बचाना व्यक्तियों और परिवारों का अपना निजी काम हो गया है।

कहना न होगा कि मानव जीवन की अवस्थाएं पशु से बहुत भिन्न होती हैं। पशु का छौना पैदा होते ही दौड़ पड़ता है, मानव शिशु यदि माता-पिता की स्नेह-छाया न मिले तो जी न सके। मानव अस्तित्व इसका प्रमाण है कि समाज में सौहार्द है और मानवता शेष है। हमारे लिए यह गौरव की बात है कि हम भारतीय परंपरा के अंग हैं। इस अनुभूति के साथ हमारा यह नैतिक दायित्व बनता है कि इस व्यापक सामंजस्य की परंपरा को आगे बढ़ाएं। मानवीय गुणों को और अधिक समृद्ध करने के लिए यह ज़रूरी है कि इस मानवीय प्रतिबद्धता को जीवित रखें।

उदारवाद आज के सांप्रतिक परिप्रेक्ष्य में एक मानवीय मूल्य के रूप में उभर रहा है और उसे स्वीकृति भी मिली है और इसके प्रसार के लिए सचेत प्रयास भी किए गए हैं। यह सब उपभोक्तावाद का विस्तार है। इन प्रयासों की बुनियादी कमी यह थी कि इसने संसार के उन सभी समाजों को 'पिछड़ा' माना जिसमें पश्चिमी समाज के मूल्य अनिवार्यत: स्वीकार्य नहीं थे या यूं कहें कि इन मूल्यों का विकल्प स्वीकृत न था। भारत में इस नयी जीवनशैली ने पांव पसारे। तेज़ी से बढ़ते हुए शहर, उद्योग और अर्थव्यवस्था में बढ़त हासिल करने के लिए हम प्रयत्नशील रहे लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में सामाजिक सहजीवन की पारंपरिक बुनावट गौण हो गई और लगभग भुला दी गई। अब लोगों के संबंध व्यक्तिगत मैत्री और वैयक्तिक आवश्यकताओं के बल पर टिके हुए हैं। उन्हें कुछ व्यक्तियों के बारे में मालूम है किंतु जिन समुदायों से वे व्यक्ति आते हैं उनमें उनका कोई एक परिचय नहीं रह जाता। इसलिए किसी समुदाय के बारे में आसानी से एक ऐसी राय कायम कर सकते हैं जिसको कायम करने के लिए उस समुदाय से उन्होंने कोई संबंध नहीं बनाया है, अपितु जो केवल विविध प्रकार के मीडिया के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त सूचनाओं पर आधारित है। इस प्रकार कहीं कुछ भी असंगत और अनुचित घटित होता है तो उसकी जिम्मेदारी उन अनुचित घटनाओं को अंजाम देने वाले व्यक्तियों तक सीमित न रहकर उन समुदायों तक फैल जाती है जिनसे वे व्यक्ति आते हैं।

अज्ञान के चलते परस्पर समुदायों के बीच अविश्वास पनपता है। इन अविश्वासों को कम करने के जो उपाय अपनाए जाते हैं उनके पीछे भी समुदायों की समझ काम नहीं करती क्योंकि जिन लोगों के द्वारा यह उपाय सुझाए जाते हैं उनका स्वयं का परिचय समुदायों से नहीं होता। अत: उदाहरण के लिए सांप्रदायिक दंगे को हम आसानी से दो संप्रदायों के बीच की लड़ाई मान लेते हैं या ठहरा देते हैं जबकि ज्यादातर मामलों में सच्चाई यह होती है कि इनमें दोनों ही पक्ष अपने हिंसात्मक कार्य के लिए सांप्रदायिक पहचान को आड़ बनाते हैं। यदि ऐसा न होता तो प्रत्येक दंगे के थमने के बाद हम अपने सहजीवन पर वापस लौटने में पूरी तरह सक्षम नहीं हो पाते। जिन मानवीय उदाहरणों को हर दंगे में सुर्खियां मिलती हैं कि किस प्रकार एक समुदाय के लोगों ने दूसरे समुदाय के लोगों की विपत्ति में सहायता की, ऐसी ख़बरें भी हमारे सामने न होतीं।

यह सच है कि समय के साथ-साथ विभिन्न समुदायों के बीच आपसी रिश्ते, परस्पर संबंध विच्छिन्न हो रहे हैं और एक-दूसरे की सांप्रदायिक पहचान को अस्वीकार किया जा रहा है, उसे नकारने की कोशिश हो रही है। हम यह जानने का कोई प्रयास नहीं करते कि जिन समुदायों और संप्रदायों के बारे में हम राय बना रहे हैं वे वस्तुत: क्या हैं और स्थानीय स्तर पर उनका क्या इतिहास रहा है। सांस्कृतिक विविधता, व्यवहार और आचरण की बहुलता और आचरण तथा उपासना पद्धति के वैकल्पिक स्वरूपों की स्वीकृति सांप्रदायिक सौहार्द की एक बुनियादी शर्त है।

इस बहुलता और वैकल्पिकता की स्वीकृति के लिए स्थानीय स्तर पर समुदायों में परस्पर संबंध के विकास की चेष्टा भी आवश्यक है। सामाजिक जीवन में विभेद स्वाभाविक है और एक हद तक ज़रूरी भी। परिधियां सीमा-रेखा अस्तित्व की पहचान को रेखांकित करती हैं पर यही परिधि तब बाधा बन जाती है जब उससे होकर आवाजाही की मनाही हो जाती है। तब वह सीमा-रेखा तोड़ने का, विरोध और वैमनस्य का सबब बन जाती है और एक का अस्तित्व दूसरे का विरोधी बनकर तन जाता है। बड़े पैमाने पर यह स्थिति 'जियो और जीने दो' के नियम की याद दिलाती है। आज समुदाय और देश-प्रदेश इसे भुलाकर एक-दूसरे को अपने विरोधी या शत्रु के रूप में देखते हैं और उस दृष्टि से अपने को वंचित कर रहे हैं जो व्यापक सत्य है और जो हमारी सुदीर्घ परंपरा का हिस्सा है। व्यक्ति हो या देश अकेले अपने में अधूरा और अपर्याप्त ही रहेगा। देश और काल से जुड़ने में ही जीवन की संभावना बनती है।❑

(लेखक राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नयी दिल्ली से संबद्ध हैं।
ई-मेल : shuklanhrc@yahoo.com)

स्वस्थ रहने का अधिकार

● ऋतु सारस्वत

हम एक नयी सदी में प्रवेश कर चुके हैं। पिछले दशक ने भारत के महाशक्ति बनने के बारे में दावेदारी की, तो यह दशक उसे पूरा करने का समय माना जा रहा है, परंतु यह तभी संभव हो सकता है जब देश का हर नागरिक स्वस्थ हो। यह जानने और मानने के बावजूद कि सेहत मनुष्य के लिए सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख अहमियत रखती है, भारतीय 'बीमार' रहने के लिए विवश हैं। 90 के दशक में आर्थिक प्रगति ने भारत में स्वास्थ्य सेवाओं की तस्वीर बदल दी। देश में बेहद उत्कृष्ट स्वास्थ्य सुविधाएं तो बढ़ीं, लेकिन वे शहरी क्षेत्रों तक ही सिमट कर रह गईं। संविधान का अनुच्छेद 21 सिर्फ़ जीने का अधिकार ही नहीं देता बल्कि सम्मान से पूर्ण स्वास्थ्यता के साथ जीने का अधिकार देता है। परंतु हमारा यह अधिकार कितना सुरक्षित है यह स्वयं में एक बहुत बड़ा प्रश्न है। विश्व जनसंख्या में 16.5 प्रतिशत की भागीदारी निभाने वाला भारत विश्व की बीमारियों में 20 प्रतिशत का योगदान करता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, स्वास्थ्य का अर्थ मात्र रोगों का अभाव नहीं बल्कि शारीरिक और मानसिक तंदुरुस्ती की सकारात्मक अवस्था है। अगर इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो भारत की स्थिति चिंताजनक है। श्वास संबंधी रोग, तपेदिक, अतिसार, परजीवी बैक्टीरिया जनित बीमारियों के साथ-साथ प्रसव संबंधी समस्याओं से त्रस्त लोगों की संख्या भारत में एक तिहाई है। भारत उन देशों में से एक है जहां महिलाओं और बच्चों का स्वास्थ्य समाज और राष्ट्र की प्राथमिकताओं में नहीं है। यह वक्तव्य स्टेट ऑफ द वल्ड्र्स मदर्स, 2010 नामक रिपोर्ट पर आधारित है। इस रिपोर्ट के अनुसार भारत का स्थान हिंसाग्रस्त अफ्रीकी देशों - केन्या और कांगों से भी नीचे है। मदर्स इंडेक्स के मामले में क्यूबा शीर्ष स्थान पर है। बाल अधिकार संगठन सेव द चिल्ड्रन नामक अभियान की एक रिपोर्ट में यह खुलासा किया गया है कि मां बनने के लिए सर्वोत्तम स्थान की सूची में शामिल 77 देशों में भारत का स्थान 73वां है। भारत उन देशों में शामिल है जहां स्वास्थ्य संबंधी देखभाल में अंतरराष्ट्रीय मापदंडों को लागू करने में परेशानी आती है। अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संगठन ह्युमन राइट्स वाच के मुताबिक, सरकार स्वास्थ्य क्लीनिकों और अस्पतालों में होने वाली प्रसूति के आंकड़े रखती है लेकिन ये अस्पताल अक्सर संसाधनों की भारी कमी से जूझ रहे होते हैं। बहुत-सी महिलाएं प्रसूति के बाद या तो मर जाती हैं या गंभीर रूप से बीमार हो जाती हैं। भारत सरकार सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थानों में प्रसूति को प्रोत्साहित करती है जिसमें ग़रीब महिलाओं को इसके लिए प्रोत्साहन राशि भी दी जाती है लेकिन यह देखने के लिए ठोस व्यवस्था नहीं है कि गर्भावस्था संबंधी पेचीदगियों में उन्हें पर्याप्त और समय से उपचार मुहैया कराया जाता है या नहीं। भारतीय मांओं के जीवन में सबसे बड़ी बाधा स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव है। एक रिपोर्ट के मुताबिक भारत में 74,000 मान्यताप्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की और 21,066 ऑग्जिलरी नर्स मिडवाइफ (एएनएम) की कमी है। सरकारी मानदंडों के अनुसार, मैदानी इलाक़ों में 1,000 की आबादी पर एक स्वास्थ्य कार्यकर्ता और 5,000 की आबादी पर एक एएनएम होनी चाहिए। आर्थिक विकास की तेज़ गति में दौड़ता यह देश क्या यह कल्पना कर सकता है कि गर्भावस्था तथा प्रसव की जटिलताओं के चलते हर वर्ष देश में 67,000 महिलाएं अकाल मृत्यु का शिकार हो जाती हैं और इसे तब तक रोका जाना संभव नहीं जब तक देश के हर गांव में स्वास्थ्य की मूलभूत सुविधाएं नहीं पहुंचेगी? सेव द चिल्ड्रन की अभियान निदेशक के अनुसार, "महिलाओं के स्वास्थ्य का संबंध उनकी शैक्षिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति से है। भारत में हर साल हज़ारों महिलाएं केवल इसलिए मौत के मुंह में समा जाती हैं क्योंकि उनकी पहुंच मूलभूत स्वास्थ्य सुविधाओं तक नहीं हो पाती।" बच्चे, जो देश और परिवार का भविष्य हैं, उनकी स्थिति दारुण है। 'द स्टेट ऑफ एशिया पैसिफिक्स चिल्ड्रेन' के द्वारा दक्षिण एशियाई एवं एशियाई प्रशांत देशों के बच्चों तथा माताओं की स्वास्थ्य समस्याओं और प्रवृत्तियों का गहन सर्वेक्षण एवं अध्ययन किया गया तथा बाल स्वास्थ्य क्षेत्र में दक्षिण एशियाई देशों, विशेषकर भारत की स्थिति पर निराशा व्यक्त की गई। यूं तो पिछले चार दशकों में बाल मृत्युदर में कमी आई है लेकिन बावजूद इसके भारत अभी भी बाल मृत्युदर कम करने के लिए निर्धारित किए गए विभिन्न सहस्राब्दि स्वास्थ्य लक्ष्यों, एमडीजी-1 (पोषण व आहार के स्तर को सुधारने के लिए तय किया गया लक्ष्य), एमडीजी-5 (माताओं के स्वास्थ्य स्तर को उठाने के लिए निर्धारित लक्ष्य), जोकि विभिन्न देशों द्वारा निर्धारित अवधि के अंदर स्वास्थ्य एवं चिकित्सकीय सुविधा प्राप्त करने से संबंधित लक्ष्य है, को प्राप्त करने में कई विकासशील देशों, यहां तक कि श्रीलंका जैसे देश से भी पीछे है। टीकाकरण बच्चों के स्वास्थ्य का रक्षक माना जाता है परंतु यहां भी स्थिति संतोषजनक नहीं है। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के लिए किए गए अध्ययन एसेसमेंट ऑफ इंजेक्शन इन इंडिया में कहा गया है कि देश में ग्रामीण समुदायों की तुलना में शहरी समुदायों के लिए टीके का परामर्श अधिक दिया जाता है। यही नहीं टीकाकरण के दौरान असुरक्षित इंजेक्शनों के उपयोग का ख़तरा शहरों की तुलना में ग्रामीण इलाक़ों में

क़रीब दस प्रतिशत ज्यादा होता है। कुछ दिनों पूर्व केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री ने स्वीकार किया था कि देश के विभिन्न हिस्सों में 25 प्रतिशत से ऊपर बच्चों को रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाले टीके समय पर नहीं लगाए जाते। भारत दुनिया के उन चार मुख्य देशों में शामिल है, जहां पोलियों के मरीज पाए जाते हैं। अस्वस्थ भारत के पीछे मूलभूत कारण स्वास्थ्य सेवाओं की भारी कमी का होना है। सरकारी स्तर पर अनेक प्रयासों के बावजूद 'अस्वस्थ भारत' की यह तस्वीर चिंता का विषय बनी हुई है। कुछ समय पूर्व प्रधानमंत्री ने इसी संदर्भ में कहा कि भारत के स्वास्थ्य क्षेत्र में ढांचागत सुधारों की ज़रूरत है ताकि ज़मीनी स्तर पर सेवाओं में सुधार हो सके और वंचित लोगों को साधनों तक पहुंचने में मदद मिल सके। इससे बड़ी विडंबना क्या हो सकती है कि एक ओर भारत विश्व मानचित्र में 'मेडिकल टूरिज़्म' के रूप में लोकप्रिय हो रहा है वहीं दूसरी ओर देशवासी, चिकित्सकों की कमी से जूझ रहे हैं। अरबों रुपये ख़र्च करने के बावजूद देश के सरकारी अस्पतालों की हालत में अब तक कोई सुधार नहीं हुआ। इन अस्पतालों में चार साल पहले जितने डॉक्टरों और स्वास्थ्यकर्मियों की दरकार थी, वह पूरी होने के बजाय और बढ़ गई है। 11वीं पंचवर्षीय योजना की मध्यावधि समीक्षा रिपोर्ट के मुताबिक वर्ष 2005 में देश में स्वास्थ्यकर्मियों की कमी 10.93 प्रतिशत थी, जो बढ़कर 12.34 प्रतिशत हो गई है। इसी तरह वर्ष 2006 में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में ज़रूरत की तुलना में डॉक्टरों की कमी लगभग 8 प्रतिशत थी, जो दो साल बाद दोगुना से भी अधिक 15 प्रतिशत हो गई। योजना आयोग के अनुसार, स्वास्थ्य ढांचे की स्थिति में सुधार लाने के लिए 10 लाख नर्सों और उतने ही पैरामेडिकल कर्मियों की आवश्यकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के मुताबिक डॉक्टर और जनसंख्या के अनुपात के लिहाज़ से भारत की स्थिति अफ्रीका महाद्वीप के सहारा क्षेत्र से कोई खास अच्छी नहीं है। इस रिपोर्ट के अनुसार भारत में दस हज़ार लोगों पर जहां लगभग 5.9 डॉक्टर हैं, वहीं ऑस्ट्रेलिया में यह अनुपात 249:1 और ब्रिटेन में 1665:5 है। भारत ग्राम बहुल देश है परंतु दस में से आठ डॉक्टर और 80 प्रतिशत अस्पताल शहरों में हैं। ग्रामीण इलाक़ों में प्रशिक्षित चिकित्सकों की सेवाएं उपलब्ध कराना सरकारों के लिए बड़ी चुनौती रही है। हालांकि इसके लिए कई बार कड़े नियम बनाए गए। हर चिकित्सक को अपनी शुरुआती सेवाओं के दौरान एक निश्चित समय के लिए ग्रामीण इलाक़ों में बिताना ज़रूरी किया गया। गांवों में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में सेवाएं देने वाले चिकित्सकों के लिए अतिरिक्त वेतन का प्रावधान किया गया। नक्सल प्रभावित इलाक़ों में उनकी सुरक्षा और शीघ्र पदोन्नति का प्रावधान भी रखा गया। परंतु इनके कोई ठोस परिणाम नहीं निकले। विगत दिनों केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय से स्वीकृति मिलने के बाद मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया (एमसीआई) ने ग्रामीण चिकित्सकों के पाठ्यक्रम 'बैचलर ऑफ रूरल हेल्थ केयर' (बीआरएचसी) का पाठ्यक्रम निर्धारित किया है। इस समय देश के डेढ़ लाख उपकेंद्रों में एक भी चिकित्सक नहीं है और संभावना व्यक्त की जा रही है कि बीआरएससी के माध्यम से इस समस्या से निजात मिल सकेगी।

कुछ समय पूर्व देश की राष्ट्रपति ने देश के युवा चिकित्सकों से अपील की थी कि वे अपने जीवन के कुछ साल गांवों में चिकित्सा सेवा देने में लगाएं, इससे ग्रामीण क्षेत्र में गुणवत्तापूर्ण चिकित्सा सेवा मुहैया कराने के सरकारी प्रयासों को बल मिलेगा। उन्होंने कहा कि चिकित्सा जगत को चाहिए कि वह दूरदराज़ के क्षेत्र में चिकित्सा सेवा उपलब्ध कराने की दिशा में हर संभव मदद करे क्योंकि देश में मौजूदा समय में ग्रामीण क्षेत्रों की स्वास्थ्य सुविधाएं बेहद कमज़ोर हैं। पैसे और प्रतिष्ठा की चाह में चिकित्सक गांव जाने से कतराते हैं। देश में ऐसे चिकित्सकों की संख्या नाममात्र की है जिन्होंने अपने पेशे की गरिमा को अपने निजी स्वार्थों से ऊपर रखा है। चिकित्सकों की कमी को दूर करने और हर भारतीय को स्वास्थ्य का अधिकार देने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन लागू किया गया। इसे लागू किए 5 वर्ष होने को आए, लेकिन अभी तक एक लाख आबादी के लिए स्थापित सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों में 50 से 60 प्रतिशत विशेषज्ञों के पद रिक्त हैं। स्वस्थ भारत की राह में इन अवरोधों को दूर करना अति आवश्यक है। बीते दिनों असम ने इस दिशा में एक महत्वपूर्ण क़दम उठाया। असम सरकार ने राज्य के लोगों को स्वास्थ्य का अधिकार देने का फ़ैसला किया है। इस संबंध में एक विधेयक विधान सभा में 11 मार्च, 2010 को पेश किया गया। अगर यह विधेयक कानून का रूप ले लेता है तो हर सरकारी और निजी अस्पताल के लिए गंभीर रूप से बीमार लोगों को आरंभिक चौबीस घंटों तक मुफ़्त आपातकालीन चिकित्सा उपलब्ध कराना अनिवार्य होगा। इस कानून के दायरे में सिर्फ़ अस्पताल और डॉक्टर ही नहीं, बल्कि वे तमाम गतिविधियां आ जाएंगी, जिनसे लोगों के स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं की हालत में सुधार के लिए केंद्र द्वारा पूर्व में किए गए प्रयासों का कोई सार्थक परिणाम नहीं निकला है। ऐसी स्थिति में देश में सभी को स्वस्थ जीवन मिल सके इस दिशा में कोई ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है। यों तो हर बजट में केंद्र सरकार स्वास्थ्य के क्षेत्र में बजट आवंटित करती है। लेकिन महंगे स्वास्थ्य उत्पाद के बरक्स यह आवंटन नाकाफी होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि स्वास्थ्य के मद में सार्वजनिक ख़र्च बढ़ाने के अलावा ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक या सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों को उसका पर्याप्त हिस्सा मिले। भारत में स्वास्थ्य के मद में सरकारी ख़र्च क़रीब एक फीसदी है जोकि श्रीलंका और बांग्लादेश से भी कम है। देश की स्वास्थ्य समस्या को समग्र परिप्रेक्ष्य में देखना बेहद आवश्यक है। एक ओर ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधाएं बढ़ाने को लेकर संजीदगी की ज़रूरत है तो दूसरी ओर स्वास्थ्य के मद में आवंटित की जाने वाली धनराशि में आंकड़ों में बढ़ोतरी की भी आवश्यकता है। एक महत्वपूर्ण तथ्य और भी है। यह वह कि सरकार चिकित्सा की व्यावसायिकता पर रोक लगाए। इसके लिए कठोर नीतियों की आवश्यकता है। हर वह चिकित्सक, जिसके लिए चिकित्सक का पेशा धन अर्जन का माध्यम मात्र है, उसे निजी प्रशिक्षण के लिए लाइसेंस तब तक न दिया जाए जब तक वह कुछ वर्षों तक अपनी सेवाएं गांवों में जाकर न दे। निजी अस्पतालों को लाइसेंस देते समय भी यह प्रावधान रखा जाए कि वे हर माह कुछ दिनों के लिए निःशुल्क या रियायती दरों पर ग्रामीण इलाक़ों में अपने स्वास्थ्य कैंप लगाएं। 'स्वास्थ्य का अधिकार' जीने के अधिकार का अनिवार्य हिस्सा है, इसलिए देश के नीति निर्माताओं और स्वास्थ्य विभाग से अधिक मुस्तैदी और संजीदगी की अपेक्षा है। ❑

(लेखिका समाजशास्त्र की वरिष्ठ प्रवक्ता हैं।
ई-मेल : saraswatritu@yahoo.co.in

महिला अधिकार बनाम मानवाधिकार

● पिंकी पूणिया

समाज में असमानता होना स्वाभाविक है क्योंकि प्राकृतिक रूप से भी सभी व्यक्ति समान नहीं हैं। बावजूद इसके अगर समाज में व्याप्त असमानता के आधार पर किसी के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है तो वह सामाजिक अन्याय की श्रेणी में आता है। इसी अन्याय से सामाजिक न्याय की अवधारणा का जन्म हुआ और आज सामाजिक न्याय मनुष्य जीवन की आवश्यकता बन चुका है। समाज में जाति, धर्म, लिंग आदि के आधार पर भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है। यह भेदभावपूर्ण व्यवहार न सिर्फ़ समाज में विकृतियां और वैमनस्य बढ़ाता है बल्कि व्यक्ति के मानवाधिकारों का भी खुला उल्लंघन करता है। इसी सामाजिक अन्याय का एक रूप लिंग के आधार पर स्त्री के साथ किया जाने वाला भेदभावपूर्ण व्यवहार है जो एक मानव होने के नाते उसे उसके मानवाधिकारों से वंचित करता है।

मानवाधिकारों की अवधारणा कहती है कि प्रत्येक व्यक्ति का यह प्राकृतिक अधिकार है कि उसे सम्मानपूर्ण और गरिमामय जीवन ज़ीने का अवसर प्रदान किया जाए। इस प्रकार मानव अधिकार व्यक्ति के गरिमामय जीवन के लिए आवश्यक हैं। ये अधिकार व्यक्ति के पर्याप्त विकास और खुशहाली के लिए भी ज़रूरी हैं। मानवाधिकारों की सर्वव्यापी व्यवस्था का उद्देश्य सभी समाजों में व्यक्ति के सम्मानपूर्ण जीवन के लिए परिस्थितियों का पुनर्निर्माण और पुनरीक्षण करना है। मानवाधिकार प्रत्येक व्यक्ति को मानवोचित गुण होने के कारण प्राप्त हो जाते हैं तथा ये किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनतम जीवन स्तर की गारंटी देते हैं।

महिलाएं विश्व की आबादी का आधा हिस्सा हैं। बावजूद इसके हम देखते हैं कि महिलाओं के मानवाधिकारों का हनन और लिंग आधारित हिंसा व्यापक पैमाने पर जारी है। भारत में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार प्रति 24 मिनट में एक महिला यौन शोषण, प्रति 43 मिनट में अपहरण, प्रति 54 मिनट में बलात्कार का शिकार हो रही हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार प्रति 8 सेकेंड में एक महिला यौन शोषण तथा प्रति 6 मिनट में एक महिला का बलात्कार होता है।

लिंग आधारित भेदभाव के पीछे हालांकि सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्वार्थ बताए जाते हैं, किंतु इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि लिंग के आधार पर भेदभाव का बड़ा कारण यह है कि पुरुष और महिला की भूमिकाओं में निरंकुश तरीक़े से विभाजन किया गया है। लिंग भेद तथा शोषण की प्रवृत्ति अपने चरम रूप में उस समय प्रकट होती है, जब नारी को धन या संपत्ति के रूप में भोग-विलास और उत्पादन के साधन के रूप में देखा जाता है। विडंबना की बात यह है कि स्वयं महिलाओं ने भी लिंग संबंधी परंपराओं, भेदभावों को चाहे-अनचाहे जीवन के एक अपरिहार्य तथ्य के रूप में स्वीकार कर लिया था। परंतु अब महिलाएं अपने इस शोषण के प्रति जागरूक हो रही हैं और अपने मानवाधिकारों की आवाज़ बुलंद कर रही हैं। वर्ष 1995 में बीजिंग में महिलाओं की स्थिति पर एक विश्व सम्मेलन का आयोजन किया गया। यह सम्मेलन मुख्य रूप से महिलाओं के मानवाधिकारों के प्रति जागरुकता पर केंद्रित था।

महिलाओं के मानवाधिकारों का हनन उसके जन्म लेने से पहले ही कन्या भ्रूण हत्या के रूप में आरंभ हो जाता है। भारत में भ्रूण जांच पद्धति के प्रारंभ होते ही वर्ष 1984 में ही 40 हज़ार भ्रूण हत्या के मामले दर्ज़ किए गए थे। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार, भारत में महिलाओं की स्थिति निम्न बनी हुई है। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही महिला लिंगानुपात में निरंतर ह्रास हो रहा है। वर्ष 1902 में लिंगानुपात 972 था जबकि 2001 में यह अनुपात 932 हो गया। इस प्रकार महिलाओं से उनके मौलिक मानवाधिकार 'जीने के अधिकार' को भी छीना जा रहा है। जो बालिकाएं कन्या भ्रूण हत्या से बच जाती हैं उनका आगे का पूरा जीवन अपने मानवाधिकारों की प्राप्ति के लिए एक संघर्ष बन जाता है। उन्हें अपने ही परिवार में वह सम्मान और व्यवहार प्राप्त नहीं होता है जो उनके भाइयों को प्राप्त होता है। हमारे समाज में बेटा पाने की ललक जगज़ाहिर है जबकि बेटी को बोझ समझा जाता है और उस पर तथा उसकी शिक्षा पर किए गए व्यय को व्यर्थ समझा जाता है। यही कारण है कि विभिन्न जनगणना आंकड़ों के अनुसार महिलाओं की साक्षरता दर पुरुषों से कम बनी हुई है। शिक्षा विभाग के आंकड़ों के अनुसार लड़कियों द्वारा स्कूल छोड़ने की दर बहुत उच्च है। लिंग के आधार पर महिलाओं के साथ आहार में भी भेदभाव किया जाता है। प्रो. अमर्त्य सेन ने भी पोषकता के अभाव के कारण मातृत्व और बालिका शिशु की उच्च मृत्युदर की पुष्टि की है। समाज में व्याप्त दोहरे मापदंडों के कारण महिलाओं से उनके स्वच्छंद और स्वतंत्र वातावरण में रहने का मानवाधिकार भी छिन लिया गया है। उन्हें बचपन में पिता व भाई, शादी के बाद पति व पति के बाद पुत्र के संरक्षण में जीवन बिताना पड़ता है। उनके जीवन के फ़ैसलों पर उनका अपना नियंत्रण नहीं होता। कम उम्र में शादी और पारिवारिक जिम्मेवारियों का बोझ उनके व्यक्तित्व को उभरने नहीं देता। भारत में बाल विवाह महिला उत्पीड़न का एक अन्य रूप है। भारत में सदियों से बाल विवाह की प्रथा विद्यमान रही है और निरंतर बनी हुई है।

महिला मानवाधिकारों का हनन कार्यस्थल पर भी स्त्री-पुरुष के समान कार्य के लिए असमान वेतन तथा महिलाओं के शारीरिक और मानसिक शोषण के रूप में दिखाई देता है। आर्थिक स्थितियों से मज़बूर होकर महिलाओं को घर से बाहर निकलकर काम करके धन कमाना पड़ रहा है। पुरुष और महिला के काम का निरंकुश विभाजन होने के कारण महिलाओं को अक्सर छोटे स्तर के परंपरागत एवं कम आय वाले धंधे करने पड़ते हैं। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार कुल महिला जनसंख्या का 25.60 प्रतिशत भाग श्रमिक कार्यों में लिप्त है जिसका 80 प्रतिशत भाग ग्रामीण तथा असंगठित क्षेत्र में कार्यरत है।

पितृसत्ता भी महिलाओं के लिए घातक है। पुरुषों द्वारा उत्तरदायी भूमिका निभाने की धारणा ने 'महिलाओं की चिंता' से संबंधित समस्याओं को दूसरी ओर धकेल दिया है। महिलाओं को दोहरी भूमिका निभाना पड़ता है। उन्हें व्यवसाय भी करना होता है और घर में अपनी घरेलू भूमिका भी अदा करनी पड़ती है। इस तरह वह दोहरे तनाव में जीवन व्यतीत करती हैं जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं में हृदय संबंधी बीमारियों में तेज़ी से वृद्धि हो रही है। आज महानगरों में 30 से 40 प्रतिशत महिलाएं इन बीमारियों से पीड़ित हैं। समानता, न्याय और मानवाधिकारों पर आधारित एक समाज की स्थापना के लिए विकास की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी अत्यावश्यक है।

अब महिलाओं के मानवाधिकारों के हनन को ध्यान में रखते हुए महिला सुरक्षा और सशक्तीकरण के प्रयास काफी तेज़ हो गए हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रावधान 48/104 (1993) के अनुसार महिलाओं पर हिंसा प्रयोग को मानवाधिकारों का हनन माना गया है। 8 मार्च को पूरे विश्व में राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है। जून 1993 का वियना सम्मेलन तथा दिसंबर 1993 में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की समाप्ति पर संयुक्त राष्ट्र उद्घोषणा, यह सभी विश्व में महिला मानव अधिकारों के प्रति चेतना के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं।

वहीं भारत में भी महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव को रोकने तथा उन्हें सशक्त करने के लिए कई क़दम उठाए गए हैं ताकि महिलाएं अपने मानव अधिकारों का आनंद उठा सकें। इसके तहत जहां 1994 में कन्या भ्रूण हत्या को कानून बनाकर प्रतिबंधित किया गया है वहीं बालिका शिक्षा के लिए विशेष योजनाएं चलाई जा रही हैं। यही वजह है कि 1991 से 2001 के बीच महिला साक्षरता में 14.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई तथा यह बढ़कर 53.7 हो गई। कार्यस्थल पर महिलाएं स्वतंत्र और सुरक्षित वातावरण प्राप्त कर सकें इसके लिए कार्यस्थल पर यौन शोषण रोकने संबंधी कानून बनाया गया है। घर पर भी महिलाएं सुरक्षित नहीं हैं इसलिए वर्ष 2005 में सरकार द्वारा घरेलू हिंसा कानून बनाया गया तथा संपत्ति में महिलाओं को बराबर का अधिकार प्रदान किया गया है। इन सभी कानूनों का पालन ठीक प्रकार से हो सके इसलिए यह आवश्यक है कि राजनीतिक क्षेत्र, जहां कानून बनाए जाते हैं, में महिलाएं अधिक-से-अधिक संख्या में हिस्सा लें। इसलिए महिला आरक्षण का प्रावधान किया गया है जिसे स्थानीय स्तर पर लागू कर दिया गया है और राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर इस दिशा में प्रयास जारी हैं।

किसी भी राष्ट्र की परंपरा और संस्कृति उस राष्ट्र की महिलाओं से परिलक्षित होती है। महिलाएं समाज की रचनात्मक शक्ति होती हैं। आने वाले कल को सुधारने के लिए हमें आज की महिला की स्थिति में सुधार लाना होगा। इसके लिए हमें रूढ़िवादी दृष्टिकोण से उबर कर एक नया विकासवादी दृष्किोण अपनाना होगा। महिलाओं को सबल और सदृढ़ बना कर हम देश को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से सुदृढ़ बना सकते है। ❑

(लेखिका पीजीडीएवी कॉलेज, नयी दिल्ली में सहायक प्रोफेसर हैं।
ई-मेल : Pinkipunia18@gmail.com)

(पृष्ठ 28 का शेषांश)

अपराधों पर मुकदमा चलाने के लिए प्रत्येक जिले में एक न्यायालय को मानवाधिकार के लिए राज्य सरकार को मुकदमा चलाने के लिए एक लोक अभियोजक विर्निदष्ट करना होगा अथवा एक ऐसे वकील को विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त करना होगा, जिसको कम-से-कम सात वर्ष की वकालत का अनुभव हो।

● ***राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग किस प्रकार काम करता है?***

आयोग अपनी ही पहल पर अथवा प्राप्त शिकायतों के आधार पर मामले हाथ में लेता है। व्यवहार प्रक्रिया संहिता, 1908 के अंतर्गत इसे मुकदमा चलाने के लिए वे सभी अधिकार प्राप्त हैं जो एक दीवानी अदालत के पास होते हैं। इनमें गवाहों को बुलाने अथवा उनको उपस्थिति के लिए विवश करना और शपथ दिलाकर उनसे तहकीक़ात करना, किसी भी दस्तावेज़ की खोजबीन और उसको पेश करना, शपथपत्र पर गवाहियां लेना, किसी भी न्यायालय अथवा कार्यालय से किसी भी लोक अभिलेख अथवा उसकी प्रतिलिपि को मंगाना और निर्धारित किया गया अन्य कोई भी मामला शामिल है। मानवाधिकारों के उल्लंघन की शिकायतों की जांच के लिए आयोग के पास पुलिस महानिदेशक की अगुवाई में अपना स्वयं का जांच कार्मिक होता है। अधिनियम के अंतर्गत आयोग के लिए यह विकल्प मौजूद है कि वह आवश्यक होने पर केंद्र अथवा राज्य सरकार की किसी जांच एजेंसी या अधिकारी की सेवाओं का उपयोग कर सकता है। आयोग ने अनेक प्रकरणों में गैर-सरकारी संगठनों को भी संबद्ध किया है।

● ***मानवाधिकार के उल्लंघन का मामला सिद्ध होने पर आयोग क्या क़दम उठा सकता है।***

आयोग (एनएचआरसी) अपराधी के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए संबंधित सरकार को अपनी संस्तुति दे सकती है। वह आवश्यक समझे जाने पर पीड़ित अथवा उसके परिवार को तत्काल राहत प्रदान करने के लिए सिफ़ारिश कर सकती है और वह किसी भी आवश्यक निर्देश के लिए उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालयों से कह सकता है। संबंधित सरकार को आयोग की सिफ़ारिशों पर साधारण मामलों में एक माह और सशस्त्र बलों के मामले में तीन महीनों के भीतर की गई कार्रवाई के बारे में जानकारी देना होगा।

● ***आयोग से शिकायतें कैसे की जा सकती है?***

आयोग से हिंदी, अंग्रेज़ी अथवा संविधान की आठवीं अधिसूची में शामिल किसी भी भाषा में स्वत: पूर्ण शिकायतें की जा सकती हैं। अतिरिक्त दस्तावेज़ या शपथ-पत्र मांगे जा सकते हैं। आयोग चाहे तो तार से भेजी गई अथवा फैक्स या ई-मेल या मोबाइल फोन पर की गई शिकायत पर भी विचार कर सकता है। एक वर्ष से अधिक पुराने मामले, न्यायालय में विचाराधीन, अस्पष्ट, अनाम, छद्मनाम से भेजी फर्जी शिकायतों अथवा सेवा संबंधी मामलों पर आयोग विचार नहीं करती। ❑

मरीजों के मानवाधिकार

● प्रदीप कुमार

चिकित्सा व्यवसाय एक सम्मानित पेशा है और चिकित्सक भगवान का रूप होता है। परंतु इस युग में चिकित्सा व्यवसायी अपनी मानवीय मर्यादा को त्याग कर निजी स्वार्थ में लग गए हैं जबकि इसमें उच्च गुणवत्ता की चिकित्सकीय नैतिकता की आवश्यकता होती है और चिकित्सकीय व्यावसायियों से यह अपेक्षा की जाती है कि कम-से-कम इलाज के दौरान वे ईमानदार और प्रतिबद्ध रहें।

चिकित्सा ऐसा व्यवसाय है जिससे मानव के जीवन के अधिकार जुड़े हैं। स्वास्थ्य व्यक्ति का मूल अधिकार है, जिसके बिना वह अन्य मानवीय अधिकारों का उपयोग नहीं कर सकता।

परंतु इस वैश्विक युग में चिकित्सक अपनी मर्यादा व मानवीय मूल्यों को त्याग निजी स्वार्थ में लगे हैं, जबकि वे उपाधि प्राप्त करने के समय शपथ लेते हैं कि वे जीवनपर्यंत मानव सेवा करेंगे। मानवाधिकार की बात करें तो प्रत्येक चिकित्सक का यह कर्तव्य है कि वह मानव जीवन की सुरक्षा हेतु अपना कर्तव्य निभाए। जब भी किसी चिकित्सक के पास कोई मरीज़ आता है तब चिकित्सक का यह कर्तव्य बन जाता है कि वह मरीज़ को प्राथमिक चिकित्सा सुविधा प्रदान करे।

चिकित्सकीय उपेक्षा क्या है?

चिकित्सकीय उपेक्षा ऐसी परिस्थिति है जहां चिकित्सक अथवा अन्य चिकित्सकीय व्यवसायी उपेक्षा या लापरवाही के साथ मरीज़ की देखभाल करते हैं, या आपात काल में इलाज करने से मना कर देते हैं जिसके कारण मरीज़ को शारीरिक, मानसिक या आर्थिक नुक़सान होता है। चिकित्सक का मरीज़ के प्रति यह कर्तव्य है कि वह उसकी देखभाल करते समय पर्याप्त कुशलता व ज्ञान का प्रयोग करे, ऐसा न करने से मरीज़ को हानि हो सकती है।

चिकित्सीय उपेक्षा को सिद्ध करने के लिए निम्न तीन बातें आवश्यक हैं :

- प्रतिवादी का वादी के प्रति सावधानी बरतने का एक आवश्यक कर्तव्य धारण करना।
- प्रतिवादी ने अपने कर्तव्य का उल्लंघन किया हो।

- वादी मरीज़ को उसके परिणामस्वरूप क्षति अथवा हानि हुई हो।

इस प्रकार उपर्युक्त तीन बातों को सिद्ध करना आवश्यक है तभी क्षति पूर्ति की कार्यवाही की जा सकती है।

चिकित्सक का कर्तव्य

प्रत्येक चिकित्सक अथवा चिकित्सा व्यवसायी का यह कर्तव्य है कि वह मानव जीवन की सुरक्षा हेतु अपना कर्तव्य निभाए। किसी भी व्यवसाय में लगे हुए व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि उसे उस विशेष व्यवसाय के विषय में आवश्यक ज्ञान होगा तथा वह अपने कर्तव्यों का निर्वहन उचित सतर्कता और सावधानी से करेगा। अगर व्यवसाय चिकित्सा से जुड़ा है तो उसे विशेष सावधानी व सतर्कता की ज़रूरत होगी क्योंकि यह कर्म सीधे व्यक्ति के जीवन के अधिकार से जुड़ी है।

अन्य किसी भी व्यवसाय में अपेक्षित सतर्कता तथा सावधानी का मापदंड उस व्यवसाय विशेष में किसी विशेष वर्ग में लगे व्यक्तियों से अपेक्षित सावधानी के स्तर पर निर्भर करता है।

एक चिकित्सक चिकित्सा व्यवसायी को मरीज़ के प्रति निम्न कर्तव्यों का पालन करना चाहिए :

- मरीज़ को समझदारी से लेने का कर्तव्य।
- उचित सावधानी के साथ मरीज़ के उपचार में आधुनिकतम उच्च मापदंड अपनाए जाने चाहिए।
- उचित सावधानी के साथ मरीज़ का इलाज़ करना चाहिए।

अत: चिकित्सक द्वारा मरीज़ का उपचार प्रारंभ करने पर उसका यह वैधानिक कर्तव्य हो जाता है कि मरीज़ के इलाज़ के दौरान उच्चतम सावधानी व सतर्कता बरते।

चिकित्सकीय उपेक्षा से प्रभावित होने वाले अधिकार निम्न हैं :

- जीवन का अधिकार
- स्वास्थ्य का अधिकार

जीवन का अधिकार

मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, 1948 के अनुच्छेद 3 में सभी व्यक्तियों के लिए जीवन के अधिकार की बात की गई है जिसमें गरिमापूर्ण जीवन समाहित है। अगर कोई चिकित्सा व्यवसायी मरीज़ के जीवन के साथ खिलवाड़ करता है तो वह मरीज़ के प्राण व दैहिक स्वतंत्रता का हनन है। इसी प्रकार सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक अधिकारों की प्रसंविदा, 1966 के अनुच्छेद 6 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को प्राण व दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार है जो मरीज़ को भी प्राप्त है। इसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में जीवन के अधिकार का प्रावधान है जो प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त है, इसमें मरीज़ भी शामिल हैं। मरीज़ को भी प्राण व दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार

प्राप्त है। अगर चिकित्सीय लापरवाही के द्वारा मरीज़ को क्षति पहुंचती है तो यह उसके जीवन के अधिकार का उल्लंघन है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य विधेयक, 2009 की धारा 8 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को गरिमापूर्ण शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य का अधिकार है जिसे चिकित्सकीय उपेक्षा द्वारा छीना नहीं जा सकता।

स्वास्थ्य का अधिकार

मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, 1948 के अनुच्छेद 25 के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को एक ऐसे जीवनस्तर का अधिकार है जो स्वयं उसके और उसके परिवार के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए उपयुक्त हो। इसमें स्वास्थ्य संबंधी देखरेख की उचित सुविधा तथा आवश्यक सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था का अधिकार शामिल है।

इस प्रकार मानवाधिकार की सार्वभौम घोषणा न केवल व्यक्ति अपितु उसके पूरे परिवार के स्वास्थ्य संबंधी देखरेख की उचित सुविधा की व्यवस्था करता है अत: राज्य का यह दायित्व है कि अपने नागरिकों को उच्च स्वास्थ्य सुविधा प्रदान करे।

इसी प्रकार आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों के प्रसंविदा, 1966 के अनुच्छेद 12 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के उच्चतम स्तर का उपभोग करने का अधिकार है। राज्य का यह दायित्व है कि वे निम्न उपाय करें :

- प्रसवदर और शिशु मृत्युदर में कमी लाने और बच्चे के स्वास्थ्य विकास की व्यवस्था करें।
- महामारी, स्थानीय, व्यावसायिक तथा अन्य रोगों की रोकथाम, इलाज़ और नियंत्रण करें।
- बीमार होने पर सभी के लिए स्वास्थ्य संबंधी सेवा और सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक उपायों का समावेश करें।

महिलाओं के स्वास्थ्य के अधिकार के संदर्भ में महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति के लिए अनुच्छेद 12 के अनुसार प्रत्येक महिला को बिना लिंग भेद के समान स्वास्थ्य का अधिकार प्राप्त होगा, ख़ासकर गर्भवती महिलाओं एवं दूध पिलाने वाली महिलाओं के स्वास्थ्य एवं पोषण का समुचित उपाय किया जाएगा तथा उनके लिए राज्य द्वारा नि:शुल्क जांच एवं परीक्षण तथा उपचार की व्यवस्था होगी। वैसे ही बच्चों के अधिकारों के लिए अनुच्छेद 24 के अनुसार प्रत्येक बच्चे को स्वास्थ्य का अधिकार है साथ ही उसे जन्म-पूर्व व जन्म के पश्चात शिशु व माता दोनों को उच्च चिकित्सकीय सेवा प्राप्त करने का अधिकार है।

चिकित्सकीय उपेक्षा के बढ़ते मामलों के कारण

- बढ़ती स्वास्थ्य ज़रूरतें।
- झोलाछाप चिकित्सकों की भरमार।
- लचर स्वास्थ्य ढांचा।
- अस्पताल, डिस्पेंसरियों की गुणवत्ता व मापदंड में कमी।
- कोई ठोस कानून का न होना।
- लंबी और थकाऊ कानूनी प्रक्रिया।

भारतीय चिकित्सा परिषद अधिनियम, 1956 के तहत बिना मान्यता प्राप्त मेडिकल शिक्षा प्राप्त किए इलाज करने को अपराध घोषित किया गया है। लेकिन इस कानून का उल्लंघन करने वालों के लिए एक हज़ार रुपये का जुर्माना या एक साल कैद या दोनों तरह के दंड का प्रावधान है। यही नहीं, चिकित्सक का बोर्ड लगाकर कौन प्रैक्टिस कर रहा है इसे जांचने वाली कोई एजेंसी भी नहीं है। अगर कोई चिकित्सकीय उपेक्षा की शिकायत करना चाहता है तो उसे जिला चिकित्सा अधिकारी के पास जाना होगा। वह अपने स्तर पर इसकी जांच करने के बाद राज्य चिकित्सा परिषद से संबंधित चिकित्सक के रजिस्ट्रेशन का सत्यापन करेगा और ग़लत पाए जाने के बाद आरोपी के ख़िलाफ़ सम्मन जारी करेगा। अगर वह खुद को सही नहीं साबित कर पाता है तो ऐसी स्थिति में शिकायत पुलिस में भेजी जाएगी। पुलिस मामले को मजिस्ट्रेट के पास ले जाएगी जहां लंबी न्यायिक प्रक्रिया के बाद अगर वह दोषी पाया जाता है तो उसे एक हज़ार का जुर्माना या महीनेभर की जेल की सजा सुनाई जाती है।

हाल ही में संसद द्वारा क्लीनिकल प्रतिष्ठान पंजीकरण एवं विनियमन विधेयक, 2010 पारित किया गया जिसमें यह स्पष्ट और अनिवार्य प्रावधान किया गया है कि अगर कोई मरीज़ आपातकाल में आता है तो उसे चिकित्सकीय सेवाएं और इलाज़ प्रदान करना अनिवार्य है। अब इलाज़ करने वाले हर छोटे-बड़े चिकित्सा प्रतिष्ठान को अपना पंजीकरण करवाना ज़रूरी होगा। साथ ही वे आपातकालीन इलाज़ से इंकार नहीं कर सकते। अगर वे ऐसा करते हैं तो उनका पंजीकरण निरस्त किया जा सकता है। साथ ही बेवज़ह जांच और ऑपरेशन कर अपनी जेब भरने वाले चिकित्सकों एवं अस्पताल के लिए क्लीनिकल ट्रीटमेंट स्टैंडर्ड प्रोटोकॉल के द्वारा एक आदर्श प्रक्रिया सुनिश्चित करने की प्रक्रिया शुरू हो गई है। इससे मनमानी जांच और ऑपरेशन पर अंकुश लगेगा।

विनियमन बना तो दिया गया है मगर उसका क्रियान्वयन किस हद तक हो पाता है यह अभी देखा जाना है। फिर भी इसे एक बड़ा क़दम कहा जा सकता है। इससे चिकित्सकीय गुणवत्ता को बनाए रखा जा सकता है। लेकिन अभी भी चिकित्सकीय उपेक्षा रोकने से संबंधित कोई स्पष्ट और समुचित कानून नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय के फ़ैसले ही उपचार में मार्गदर्शन का कार्य कर रहे हैं, चाहे वे इंडियन मेडिकल एसोशिएसन बनाम वी.पी. शांता मामला हो या डॉ. सुरेश गुप्ता बनाम दिल्ली सरकार, जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य आदि। इन सभी मामलों में न्यायालय ने चिकित्सकीय उपेक्षा कानून का व्यापक निर्वचन कर मार्गदर्शक निर्णय दिया है।

भारत जैसे विशाल देश के लिए वर्ष 2009 में राष्ट्रीय स्वास्थ्य विधेयक, 2009 लाया गया जिसका उद्देश्य स्वास्थ्य देखभाल और आपातकालीन चिकित्सकीय सेवाओं को और अधिक प्रभावी बनाना है। धारा 9(ई) के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति समुचित स्वास्थ्य अधिकार के साथ प्रशिक्षित चिकित्सा व्यवसायी से उपचार प्राप्त करने का अधिकारी है, साथ ही वैज्ञानिक पद्धति से उच्च गुणवत्ता वाली सुरक्षित चिकित्सा सेवा प्राप्त करने का भी अधिकारी है। धारा 14(1) के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अच्छी स्वास्थ्य सेवाओं के साथ बिना किसी चिकित्सकीय उपेक्षा के चिकित्सा कराने का अधिकार है। वहीं धारा 14(4) के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को चाहे उसने शुल्क दिया हो अथवा नहीं, आपातकाल में चिकित्सा सेवा प्राप्त करने का अधिकार है।

निष्कर्ष

स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य सुरक्षा मानव के सम्मानपूर्ण जीवन का एक मूलभूत आवश्यक तत्व है। यह व्यक्ति के उन मानवीय अधिकारों से संबद्ध है जिसके बिना व्यक्ति अपने अन्य मानवीय अधिकारों का उपयोग नहीं कर सकता। स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य सुरक्षा मानव अधिकार का मूल है और चिकित्सकीय उपेक्षा इस अधिकार पर कुठाराघात करता है।

स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य रक्षा का अधिकार मौलिक अधिकार है, जिसका संरक्षण किया जाना आवश्यक है। बढ़ते हुए चिकित्सकीय उपेक्षा के मामलों को देखते हुए चिकित्सा

(शेषांश पृष्ठ 40 पर)

कैदियों के साथ मानवता का व्यवहार

● अरविन्द कुमार तिवारी

मानव अधिकार की घोषणा के अनुच्छेद 5 जिसमें यातना, क्रूर, अमानवीय अथवा अपमानजनक व्यवहार या दंड का प्रतिषेध किया गया है तथा सिविल एवं राजनीतिक अधिकार प्रसंविदा के अनुच्छेद 10 के परिच्छेद 1 के अंतर्गत यह प्रावधान किया गया है कि अपनी स्वतंत्रता से वंचित किए गए सभी व्यक्तियों के साथ मानवतापूर्वक तथा मानव की अंतर्निहित गरिमा हेतु सम्मान के साथ व्यवहार किया जाना चाहिए। किंतु भारतीय संविधान के भाग 3 में इस प्रकार का कोई प्रावधान नहीं है जो कैदियों के साथ किए जाने वाले स्वविवेकी और कभी-कभी पाशविक व्यवहार से उनकी सुरक्षा करें।

प्राण के अधिकार

न्यायालय ने यह मान्यता दी है की प्राण का अधिकार 'केवल पशुवत अस्तित्व अथवा वनस्पति पदार्थ' से कहीं अधिक है। यहां तक कि कारागार में किसी व्यक्ति के साथ गरिमा पूर्ण व्यवहार किए जाने की अपेक्षा की जाती है और प्रत्येक व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 19 एवं 21 में विनिर्दिष्ट सभी अधिकारों का उपयोग करता है। किसी व्यक्ति के साथ बर्बरता पूर्ण एवं अमानवीय व्यवहार तथा साशय भेदभाव को न्यायालय ने प्रतिबंधित कर दिया और उसे संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्राण के अधिकार का उल्लंघन माना। न्यायालय ने एकांत परिरोध के दंड को प्रतिबंधित कर दिया और असाधारण रूप से लंबे समय तक कैदियों को हथकड़ी अथवा बेड़ी में रखने को केवल उन मानवों तक निर्बंधित किया है जहां यह अत्यंत आवश्यक हो। न्यायालय ने हथकड़ी-बेड़ी हटाने का आदेश यह कहकर दिया की यद्यपि कारागार में किसी अपराध के लिए विधिपूर्वक निरुद्ध किए जाने के कारण उक्त कैदी को स्वतंत्रता का अधिकार नहीं है फिर भी उसे प्राण का अधिकार है। अनुच्छेद 21 में प्रदत्त प्राण के अधिकार का तात्पर्य पशुवत अस्तित्व से अधिक है। इस प्रावधान द्वारा अंग-भंग करने अथवा किसी भुजा या पैर का विच्छेदन करने या आंख निकालने अथवा शरीर के किसी ऐसे अंग को, जिससे अंतर्रात्मा बाह्य जगत से संबंध स्थापित करती है, के नष्ट किए जाने को निषिद्ध किया गया है। विचाराधीन कैदियों को दोषसिद्ध कैदियों के साथ रखे जाने की प्रथा को अमानवीय ठहराया गया। इस प्रकार की प्रथा अनुच्छेद 19 के युक्तियुक्त परीक्षण एवं अनुच्छेद 21 के उचित होने के विरुद्ध है।

मानव गरिमा के साथ जीवित रहने का अधिकार

संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रत्याभूत मूल्यवान अधिकारों के लिए दोषसिद्ध व्यक्ति हकदार होता है और उसे विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के सिवा प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता है। कैदी अथवा निरुद्ध व्यक्ति कारागार की चारदीवारी से बाहर जाकर स्वतंत्रतापूर्वक विचरण नहीं कर सकता है और न ही जेल से बाहर व्यक्तियों के साथ अपनी स्वतंत्र इच्छा से सामाजिक संबंध स्थापित कर सकता है। किंतु मानव गरिमा के साथ जीवित रहने के अधिकार के एक भाग के रूप में और प्राण के अधिकार के आवश्यक घटक की तरह उसे अपने पारिवारिक सदस्यों एवं मित्रों के साथ साक्षात्कार करने का अधिकार होगा तथा पारिवारिक सदस्यों एवं मित्रों के साथ साक्षात्कार के अधिकार को विनियमित करने वाले कारागार विनियमन द्वारा निर्धारित किए गए किसी भी कारागार नियम अथवा प्रक्रिया को संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 21 के अंतर्गत तब तक संवैधानिक रूप से विधिमान्य नहीं ठहराया जा सकता है जब तक यह युक्तियुक्त, उचित एवं न्यायपूर्ण न हो। निरुद्ध व्यक्ति को एक सप्ताह में अपने परिवार के सदस्यों एवं मित्रों के साथ कम से कम दो बार साक्षात्कार करने की स्वीकृति दी जानी चाहिए और रिश्तेदारों एवं मित्रों के लिए यह संभव होना चाहिए कि वे कारागार अधीक्षक से स्वीकृति प्राप्त करके किसी भी युक्तियुक्त समय में किसी भी निरुद्ध व्यक्ति से मिल सकें।

अधिवक्ता से परामर्श लेने का अधिकार

अभिरक्षा के दौरान पूछताछ के क्रम में अधिवक्ता से परामर्श लेने संबंधी अभियुक्त का अधिकार अनुच्छेद 21 के अंतर्गत आता है।

राज्य से प्रतिकर लेने का अधिकार

पुलिस अभिरक्षा या जेल में उसके मूल अधिकारों का राज्य या उसके सेवकों द्वारा उल्लंघन होता है तो राज्य को ऐसे नागरिकों को प्रतिकर देना होगा।

हथकड़ी लगाने के विरुद्ध संरक्षण का अधिकार

हथकड़ी का प्रयोग तभी किया जा सकता है जब कैदी के पुलिस अभिरक्षा से भागने का 'स्पष्ट और वर्तमान ख़तरा' हो और यदि ऐसा हो तो उसके कारणों का स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए। अन्यथा अनुच्छेद 21 के अधीन विहित प्रक्रिया अनुचित और अवैध हो जाएगा। किसी भी श्रेणी के पुलिस अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट के लिखित और विनिर्दिष्ट आदेश के सिवाय बेड़ी का प्रयोग नहीं किया जाएगा। रोगी कैदियों को अस्पताल में हथकड़ी लगाना और रस्सी से बांधना अमानवीय है और अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है।

अवैध गिरफ्तारी से संरक्षा का अधिकार

किसी व्यक्ति को किसी अपराध के सहभागी होने के संदेह मात्र पर गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करते समय पुलिस अधिकारी को इस बात से संतुष्ट होना आवश्यक है कि उसे गिरफ्तार करने का युक्तियुक्त औचित्य है। गिरफ्तारी के लिए इस बात का पालन आवश्यक है कि गिरफ्तार व्यक्ति को, यदि वह प्रार्थना करता है तो उसके किसी ऐसे मित्र, संबंधी या किसी अन्य व्यक्ति, जिसे वह जानता है या उसके कल्याण में हो सकता है, उसकी गिरफ्तारी की तथा उस स्थान की जहां वह निरुद्ध है, शीघ्र सूचना दे। पुलिस अधिकारी गिरफ्तार व्यक्ति को थाने में लाने पर यह बताए कि उसे उक्त अधिकार प्राप्त हैं। पुलिस डायरी में

इस बात की प्रविष्टि की जाएगी कि इस संबंध में किस व्यक्ति को सूचित किया गया था। ये सभी संरक्षण संविधान अनुच्छेद 21 तथा 22 में निहित हैं।

किसी भी प्रकार का उत्पीड़न या क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार चाहे वह जांच के दौरान प्रश्न पूछने या अन्य स्थानों पर हो, अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण करता है। गिरफ्तारी और निरोध के मामले में इस सिद्धांत का पालन करना होगा कि जांच करने वाले पुलिस अधिकारी का पदनाम सही और स्पष्ट होना चाहिए। ऐसे सभी पुलिस कर्मचारी जो गिरफ्तार व्यक्तियों से पूछताछ करते हैं, विवरण रजिस्टर में दर्ज़ होना चाहिए। गिरफ्तार करने वाला पुलिसकर्मी गिरफ्तारी के समय एक मेमो बनाएगा जो कम से कम दो साक्षियों द्वारा प्रमाणित होगा। वे गिरफ्तार व्यक्ति के परिवार के होंगे या मोहल्ले के प्रतिष्ठित व्यक्ति होंगे। गिरफ्तार या निरुद्ध व्यक्ति को यह अधिकार होगा कि उसके एक मित्र, संबंधी या किसी अन्य व्यक्ति, जिसको वह जानता हो या जिसे उसकी कुशलता में दिलचस्पी हो, को इसकी सूचना दी जाए। पुलिस गिरफ्तारी का समय, स्थान, अभिरक्षा के स्थान की सूचना गिरफ्तार व्यक्ति के मित्र को देगी या यदि वह जिले से बाहर रहता है तो विधिक संस्था या उस क्षेत्र के पुलिस केंद्र के माध्यम से तार द्वारा गिरफ्तारी की सूचना 8 से 12 घंटे के भीतर अवश्य देना होगा। गिरफ्तार व्यक्ति को इस अधिकार के बारे में जानकारी होनी चाहिए कि उनकी गिरफ्तारी की सूचना यथाशीघ्र किसे दी गई है। निरोध के स्थान पर गिरफ्तारी की सूचना डायरी में दर्ज करनी होगी, जिसमें उस मित्र के नाम का उल्लेख होगा, जिसे गिरफ्तारी की सूचना दी गई है और उस पुलिस कर्मचारी के नाम और विवरण का उल्लेख होगा जिसकी अभिरक्षा में गिरफ्तार व्यक्ति है। गिरफ्तार व्यक्ति यदि प्रार्थना करता है कि उसकी जांच कराई जाए तो उसके शरीर में पाई गई बड़ी और छोटी चोटों को भी दर्ज किया जाना चाहिए। व्यक्ति की गिरफ्तारी के अड़तालीस घंटे के भीतर प्रशिक्षित डॉक्टरों द्वारा राज्य या केंद्र राज्य क्षेत्र के स्वास्थ्य सेवा निदेशक द्वारा अनुमोदित डॉक्टरों के पैनल में से किसी डॉक्टर द्वारा डॉक्टरी जांच करानी चाहिए। स्वास्थ्य निदेशक सभी तहसीलों एवं जिलों के लिए ऐसा पैनल बनाएगा। सभी दस्तावेज, जिसमें मेमो भी शामिल है, की प्रतिलिपियां क्षेत्र के मजिस्ट्रेट के रिकार्ड को भेजी जाएंगी। गिरफ्तार व्यक्ति को पूछताछ के दौरान अपने अधिवक्ता से मिलने दिया जा सकता है यद्यपि पूछताछ की पूरी अवधि में यह आवश्यक नहीं है। सभी जिलों एवं राज्य के मुख्यालय में पुलिस नियंत्रण कक्ष बनाया जाना चाहिए जहां गिरफ्तारी और उसकी अभिरक्षा की स्थान की सूचना गिरफ्तार करने वाले पुलिस कर्मचारी को 12 घंटे के भीतर देना होगा और उसे पुलिस नियंत्रण कक्ष के स्पष्ट स्थान पर प्रदर्शित करना होगा। इसके पालन में विफलता पर संबंधित अधिकारी विभागीय कार्रवाई के अतिरिक्त न्यायालय अवमानना के लिए भी दोषी होगा और उसके विरुद्ध देश के किसी भी उच्च न्यायालय में, जिसे यह अधिकार हो, कार्रवाई प्रारंभ की जा सकती है। संविधान के अनुच्छेद 21 और 22 में अपेक्षाएं निहित हैं। इनका कठोरता से पालन किया जाना चाहिए। ये सभी अपेक्षाएं अन्य गैर सरकारी अभिकरणों पर भी लागू होंगी। ❑

(लेखक पटना उच्च न्यायालय में अधिवक्ता हैं।
ई-मेल : aktadvocate.ara@rediffmail.com)

(पृष्ठ 38 का शेषांश)

विधियों में आवश्यक सुधार प्रक्रिया के द्वारा मरीज़ों के अधिकार एवं चिकित्सा व्यवसायियों के दायित्वों का निर्धारण किया जाना चाहिए, ताकि चिकित्सा प्रणाली में कोई कमी न रहे।

इस संदर्भ में निम्नांकित सुझाव कारगर सिद्ध हो सकते हैं :

- प्रत्येक मरीज़ को धर्म, जाति, लिंग, आयु, वंश, राजनीतिक संबंध, आर्थिक स्तर के भेदभाव के बिना स्वास्थ्य संबंधी एवं चिकित्सकीय उपचार का अधिकार दिया जाना चाहिए।
- प्रत्येक मरीज़ को आपातकालीन चिकित्सा सुविधा का अधिकार होना चाहिए।
- चिकित्सकीय उपेक्षा व्यक्ति के मूल मानवाधिकार स्वास्थ्य के अधिकार का हनन करती है साथ ही यह व्यक्ति के गारिमामय जीवन के अधिकार को ठेस पहुंचाती है। अत: हमें अनुच्छेद 21 में संवैधानिक संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 21(ठ) जोड़कर चिकित्सा के अधिकार व स्वास्थ्य सुरक्षा के मानक को मूलभूत अधिकार बनाना होगा।
- चिकित्सकीय उपेक्षा पर अभी कोई स्पष्ट कानूनी प्रावधान नहीं है। इसके लिए हमें अपकृत्य विधि, भारतीय दंड संहिता, साक्ष्य विधि का सहारा लेना पड़ता है। अत: एक स्पष्ट कानूनी प्रावधान विधायिका द्वारा करना होगा ताकि चिकित्सकीय उपेक्षा के मामलों की असल सुनवाई हो सके और पीड़ित व्यक्ति को गरिमापूर्ण न्याय प्राप्त हो सके।
- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 246 एवं सातवीं अनुसूची की सूची-II राज्य सूची की प्रविष्टि संख्या 6 में है जोकि राज्य का विषय है और इस पर राज्य कानून बना सकते हैं। इस संदर्भ में असम का उदाहरण समीचीन होगा जो 12 मार्च, 2010 को लोगों के स्वास्थ्य के अधिकार को सुनिश्चित करने वाला कानून बनाने वाला भारत का पहला और एकमात्र राज्य बन गया। किंतु इतने विशाल गणराज्य में मात्र एक राज्य द्वारा की गई पहल अन्य राज्यों के निवासियों को उपलब्ध नहीं है। अत: भारतीय संविधान में उचित संशोधन के द्वारा लोक स्वास्थ्य, अस्पताल और डिस्पेंसरीज को समवर्ती सूची में लाया जाना चाहिए ताकि इस पर ऐसा कानून बनाया जा सके जो पूरे राष्ट्र पर लागू हो।
- चिकित्सकीय मामलों में उपेक्षा की मात्रा को निर्धारित करना कठिन है अत: विशेषज्ञों का एक पैनल हो जिसमें न सिर्फ़ चिकित्सक बल्कि अधिवक्ता, समाजशास्त्री और शिक्षाविद भी शामिल हों जो मामले की जांच करें।
- चिकित्सा एक सम्मानित व्यवसाय है जिसमें उच्च गुणवत्ता के चिकित्सकीय व्यवहार की आवश्यकता होती है। चिकित्सा व्यवसायिकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे इलाज़ के दौरान ईमानदार और प्रतिबद्ध रहें।
- राज्य का यह दायित्व है कि भारतीय चिकित्सा अधिनियम के तहत पंजीकृत चिकित्सक ही चिकित्सा व्यवसाय करें।
- व्यक्ति का जीवन अनमोल है, उसे बचाने की पूरी कोशिश करनी चाहिए ताकि चिकित्सा जगत की प्रतिष्ठा व मरीज़ के साथ उसका रिश्ता व विश्वास कायम रहे। ❑

(लेखक भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के मानवाधिकार विभाग में शोध छात्र हैं।
ई-मेल : pradeep9450245771@gmail.com)

मानव अधिकार तथा मीडिया

● अंशु गुप्ता

मीडिया का प्रमुख कार्य है आम जनता तक सही सूचनाएं सही समय पर पहुंचाना ताकि वे अपना निर्णय स्वयं ले सकें और अपनी परिस्थितियों को अच्छी तरह आंक सकें। मीडिया से निर्भीकता तथा सत्यनिष्ठा की जो उम्मीदें की जाती हैं वे इस कारण कि वह जनसामान्य के प्रति अपनी इस प्रतिबद्धता से विचलित न हो।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग इसके समांतर ही एक भूमिका निभाता है। वह जनसामान्य को उसके सभी रिश्तों में वास्तविक भूमिका और उचित जानकारी से संपन्न कराने का उत्तरदायित्व लेता है। ये रिश्ते व्यक्ति और राज्य के, व्यक्ति और समाज के तथा व्यक्ति और परिवार के भी हैं। जहां कहीं भी मनुष्य को उसकी गरिमा से वंचित करने की कोशिश की जाती है, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अपने अनिवार्य हस्तक्षेप से उसे दूर करने का प्रयास करता है। इस प्रकार अपनी-अपनी भूमिका में मीडिया और मानव अधिकार आयोग दोनों ही मनुष्य को संवेदनशील बनाने और उसे अपनी भूमिका का बोध कराने में निरंतर सक्रिय रहते हैं। ये दोनों ही आम आदमी को सशक्त बनाने के माध्यम हैं।

परिवर्तन के इस युग में किसी भी आंदोलन की सफलता या विफलता और उसकी व्यापकता की शर्त यह है कि जारी आंदोलन के मुख्य मुद्दों की यथोचित जानकारी हो। यदि ऐसा नहीं होगा तो उस आंदोलन का असर अकाल मौत का शिकार हो जाएगा। मानव अधिकार भी एक आंदोलन है। जब हम मानव अधिकारों की बात वर्तमान संदर्भ में करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि मीडिया का मूल स्वरूप मानव अधिकारों के पैरोकार के रूप में सामने आता है तथा उसका मूल उद्देश्य दुनियाभर के लोगों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करना है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में संचार माध्यमों को अपनी ताक़त का अंदाजा स्वाधीनता आंदोलन से हुआ। स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में समाचार-पत्रों, पत्र-पत्रिकाओं, स्वयंसेवी संगठनों का गहरा रिश्ता रहा और यही रिश्ता आज मानव अधिकारों के संदर्भ में और अधिक सबल हुआ है। आयोग का मीडिया के साथ चोली-दामन का साथ है। आयोग द्वारा मीडिया के साथ अपने संबंधों को बहुत व्यापक परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रहित को ध्यान में रखकर ऐसे तंत्र की स्थापना की कोशिश की गई है जो देशभर में मानव अधिकारों के आंदोलन की ज़मीन तैयार कर सकें। इसमें आयोग ने जहां एक ओर स्वयं ही पहल करने का प्रयास किया है वहीं दूसरी ओर मानव अधिकारों के क्षेत्र में निष्ठा से जुड़े हुए बुद्धिजीवियों, गैर-सरकारी संगठनों के विशिष्ट प्रतिनिधियों से भी सहायता ली है। मानव अधिकारों के संघर्ष में ज़रूरत एक जनमत तैयार करने की है। इस जनमत को तैयार करने में मीडिया अपने दायित्व का पूरी ईमानदारी के साथ निर्वाह कर रहा है। वस्तुत: मानव अधिकारों के दायरे में जीवन के सभी क्षेत्र आते हैं। मानव अधिकारों की भारतीय संकल्पना को सही परिप्रेक्ष्य में देखने के लिए उसके पारंपरिक और लोक स्वीकृत संदर्भों का ही सहारा लिया जाना चाहिए क्योंकि बिना उन संदर्भों के मीडिया समतामूलक न होकर एक पक्षीय हो सकता है।

भारत के राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने अपने अनेक कार्यक्रमों व नीतियों की सहायता से जनता में विश्वास की आशा जगाई है। यह स्मरणीय है कि भारत में मानव अधिकारों की अवधारणा का बीज बहुत पहले से मौजूद रहा है। यहां की संस्कृति में अधिकार तथा कर्तव्य को एक सिक्के के दो पहलू मानते हुए उनके वास्तविक तात्पर्य को आत्मसात करने का प्रयास किया गया है। हमारी संस्कृति के सभी धर्म ग्रंथ स्वस्थ परंपरा, स्वस्थ संवाद और स्वस्थ जीवन के साथ सबके अभ्युदय की कामना करते हैं। यहां कर्म पर ज्यादा बल दिया गया है, फल पर आसक्ति को प्राय: नज़रअंदाज किया गया है। आज मीडिया ने अपनी अहमियत से सबको परिचित करा दिया है। मीडिया ने एक नयी संस्कृति को विकसित करने की कोशिश शुरू की है जिसे हम सशक्तीकरण की संस्कृति भी कह सकते हैं। मीडिया शक्तिशाली भूमिका में आया है। आज मीडिया के कारण ही मानव अधिकारों के बहुत सारे संवेदनशील मामले सामने आए हैं। चूंकि मानव अधिकारों का सरोकार आम जनता से भी है इसलिए हमारी यह मान्यता है कि इसके संरक्षण और संवर्धन का काम केवल वकीलों तथा संविधान के विशेषज्ञों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। भारत में आयोग का गठन इसलिए किया गया था कि ऐसे व्यक्ति जिन्हें कानून की अधिक जानकारी न हो और जो वकीलों को मोटी रकम अदा करने में समक्ष नहीं हैं, अपनी शिकायतों का हल तलाश सकें। यह तभी संभव होगा जब आयोग जैसी संस्थाओं और जनता को मिलाने वाली सबसे अहम कड़ी मीडिया का पूरा-पूरा सदुपयोग किया जा सके। जनसंचार माध्यमों अथवा मीडिया के द्वारा भी हम आम जनता को जागरूक बनाने में सफल सिद्ध हो सकते हैं। मीडिया स्वयं भी मानवाधिकारों के संरक्षण का एक मंच कहा जा सकता है। वैसे भी यह मीडिया के सहज कर्तव्यों में शामिल है कि वह नागरिकों पर हो रहे मानवाधिकार-हनन संबंधी घटनाओं का पर्दाफाश करे। एक जिम्मेदार मीडिया का दायित्व है कि वह अपने चैनलों में संवेदनशील पत्रकारों, संवाददाताओं की नियुक्ति से पूर्व उन्हें मानवाधिकारों की सामाजिक संकल्पनाओं से अवगत कराए। कुछ चैनलों ने सस्ती लोकप्रियता के चक्कर में भी बहुत सारी ऐसी अनावश्यक बातों को तूल देना शुरू कर दिया है जो न तो समाज के हित में हैं और न ही देश के हित में। इस नज़रिये में बदलाव की ज़रूरत है। इस संदर्भ में कुछ खास सुझाव इस तरह हैं :

- मीडिया को सस्ती लोकप्रियता से बचना चाहिए।

- राष्ट्र एवं समाज के लिए उपयोगी नज़रिये वाली सकारात्मक सोच को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। सस्ती लोकप्रियता के संबंध में घटित एक घटना का उदाहरण स्मरण आता है। पटना में एक व्यक्ति द्वारा आत्मदाह करने की कोशिश को रोकने के बजाय कुछ टीवी चैनलों द्वारा उस जलते हुए आदमी के दृश्य को सीधे प्रसारित किया गया। इसे मीडिया का जिम्मेदाराना रूप नहीं माना जा सकता।
- मीडिया में कार्यरत सभी पत्रकारों को मानव अधिकारों के प्रति अधिक संवेदनशील और जागरूक बनाया जाए। यदि संभव हो तो उन्हें राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग में एक सप्ताह का प्रशिक्षण भी दिया जाए।
- मानव अधिकारों के किसी भी अभियान की कार्यसूची में मीडिया की स्वतंत्रता को प्रमुख स्थान दिया जाना चाहिए क्योंकि भारत के संविधान का अनुच्छेद 19 मीडिया की स्वतंत्रता की गारंटी देती है। फिर भी समय-समय पर मीडिया को अपने विरोधों से बचाने के लिए सरकारें इन पर अंकुश लगाने का प्रयास करती हैं जोकि नहीं किया जाना चाहिए।
- सरकार की ऐसी नीतियों या सिद्धांतों के विरोध में (जो जनता के फायदे की नहीं होतीं) आवाज बुलंद करने वाले अख़बारों के संपादकों, पत्रकारों, संवाददाताओं आदि को पर्याप्त सुरक्षा दी जानी चाहिए।
- समाज के सामने मीडिया को अपना ऐसा चरित्र प्रस्तुत करना चाहिए ताकि लोगों को यह न लगे कि यह अख़बार अथवा यह टीवी चैनल समाज के किसी एक खास वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। उसमें समभाव होना चाहिए, उनकी दृष्टि में समदर्शी भाव होना चाहिए और नज़रिया बिल्कुल साफ होना चाहिए।
- आयोग द्वारा मानवाधिकार के क्षेत्र में कार्य कर रही सभी संस्थाओं और उन कानूनों का समय-समय पर ज़ायज़ा लिया जाना चाहिए जिनका उपयोग या दुरुपयोग मीडिया और पत्रकारों की स्वतंत्रता को सीमित करने के लिए किया जा रहा हो।
- मानवाधिकार आयोग का कार्य विस्तृत एवं व्यापक परिधि में फैला हुआ है। अत: आयोग और मीडिया दोनों को सद्भावना पूर्ण तरीक़े से, बिना किसी पूर्वाग्रह के राष्ट्र के बेहतर भविष्य के लिए काम करना चाहिए। आयोग की स्थापना का उद्देश्य है कि व्यक्ति की गरिमा और प्रतिष्ठा पर आंच न आए। साथ ही आयोग को बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण आदि पर भी अपनी विशेष दृष्टि डालकर सरकार को समय-समय पर सचेत करते रहना चाहिए। इस संदर्भ में आयोग अपनी महती भूमिका का निर्वाह कर रहा है। इंसान को गरिमा के साथ जीने के लिए जितने भी आवश्यक नीति व सिद्धांत हो सकते हैं, उन सब पर आयोग अपनी पैनी नज़र रखे हुए है जैसे भूखमरी से होने वाली मौतें, एनीमिया से होने वाली मौतें, किसानों द्वारा की जाने वाली आत्महत्या, जेलों तथा अस्पतालों का रखरखाव, मानसिक अस्पतालों की निगरानी आदि। साथ ही आयोग ने मीडिया और मानव अधिकारों के बेहतर रिश्ते को बढ़ावा देने वाले विश्वसनीय गैर-सरकारी संगठनों की मदद से अनेक योजनाओं को चलाने के लिए सक्रिय पहल की है।

इस संदर्भ में यह सुझाव भी विचारणीय है। मानव अधिकारों के प्रति देश की जनता को सतत जागरूक बनाने के लिए समय-समय पर आयोग अग्रणी समाचारपत्रों के संपादकों, रेडियो एवं टीवी चैनलों के प्रमुख संपादकों के साथ मिलकर एक ऐसी कार्यनीति बनाएं जिसमें मानव अधिकारों से संबंधित सभी पक्षों का बारीकी के साथ विश्लेषण किया जा सके। यदि संभव हो तो आयोग में भी एक निगरानी प्रकोष्ठ की स्थापना की जाए जिसमें विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों, विधि विशेषज्ञों, गैर सरकारी संगठनों के प्रतिनिधियों तथा युवा पीढ़ी की भी भागीदारी हो। शिक्षा के स्तर पर नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए बहुत कुछ किया जाना अभी शेष है। शिक्षा को राजनीति से दूर रखा जाना चाहिए और बच्चों के लिए ऐसे भविष्य की नींव का निर्माण किया जाना चाहिए जो धर्मनिरपेक्षता की कसौटी पर खरी उतरे। भारतीय संदर्भ में और खासकर दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में मानव अधिकारों के दायरे को न केवल विस्तृत किया जाना चाहिए बल्कि उसके अंदर आने वाले विविध आयामों को चरणबद्ध तरीक़े से विभिन्न एजेंसियों द्वारा निष्ठा एवं लगन पूर्वक लागू करने का दृढ़ संकल्प किया जाना चाहिए। मनुष्य पर होने वाला कोई भी आघात मानव अधिकारों के हनन की श्रेणी में आता है। चाहे वह क्षत-विक्षत शवों का मामला हो, चाहे झूठे प्रलोभनों का सहारा लेकर किसी भी स्त्री या पुरुष के अधिकारों का हनन करना हो अथवा बच्चों की कोमल संवेदनाओं के साथ खिलवाड़ करना। इसी संदर्भ में मुझे फ्रांसीसी फिल्म निर्देशक गोदार का कथन सहज ही याद आता है, ''मेरे लिए कैमरे का एंगल तय करना एक राजनीतिक निर्णय है।'' एक पंक्ति में कितनी बड़ी बात कह दी गई है जो आज के सार्वजनिक जीवन के हर क्षेत्र में लागू ही नहीं होती अपितु वह जीवन के सभी भागों में घुली-मिली है। भारतीय लोकतंत्र में जिस प्रकार मानव अधिकारों की स्वायत्तता के संबंध में चिंतन किया गया है उसी प्रकार मीडिया के संबंध में भी भारतीय संविधान में पूर्ण स्वायत्तता प्रदान की गई है। जिस प्रकार लोकतंत्र में कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधायिका का विशिष्ट स्थान है उसी प्रकार मीडिया को भी लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है। यदि चारों मिलकर देश और राष्ट्र के प्रति समर्पित हो निष्ठा के साथ अपनी भूमिका का निर्वाह करें तो वह दिन दूर नहीं जब भारत की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। किसी भी महल के चारों स्तंभ यदि मज़बूत होते हैं तो उन पर खड़ा होने वाला प्रासाद भी बहुत दिनों तक अपने अस्तित्व को बनाए रहता है। पिछले वर्षों में मीडिया ने समाज के हर क्षेत्र में अपना वर्चस्व कायम किया है। आयोग ने भी अपनी 13 वर्ष की अल्पावधि में भारत में मानव अधिकारों की चेतना जगाने में जिम्मेदारी के साथ एक नयी पहल की शुरुआत की है। आयोग को अपने कार्यक्रमों के माध्यम से पूरे भारत वर्ष में अपनी ज़मीन तैयार करने की कोशिश में एक दशक से भी अधिक का समय बीत गया है लेकिन अभी इसे पर्याप्त सफलता नहीं मिल पाई है। यदि मीडिया और आयोग राष्ट्रीय मुद्दे को लेकर सक्रियता से राष्ट्रीय चरित्र और उसके सरोकार को विकसित करने में भागीदारी का निर्वाह करें तो बड़ी सफलता मिलेगी। मीडिया को व्यक्तिगत घटनाओं को बहुत अधिक तरजीह नहीं देना चाहिए क्योंकि इससे असंतुलन बढ़ता है। मीडिया द्वारा किसी भी राष्ट्रीय मुद्दे पर जनमत तैयार किया जाए तो निश्चित रूप से विकास के अनेक मार्ग खुलेंगे। मेरी दृष्टि में देश का चौथा स्तंभ कहा जाने वाला मीडिया, लोकतंत्र की रक्षा के लिए होता है न कि उसे पंगु बनाकर स्वयं शक्तिशाली एवं सामर्थ्यवान बनने के लिए।

हम आशा करते हैं कि मानव अधिकारों के संरक्षण और संवर्धन के क्षेत्र में मीडिया की भूमिका दिन-पर-दिन और प्रभावी होगी और भारतीय परिवेश में उसके द्वारा किए गए कार्य आयोग के कार्य में सहभागी और पूरक होंगे। स्वाधीन भारत का जो सपना महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रनायकों ने देखा था उसे पूरा करने के काम में आयोग और मीडिया दोनों ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे। ❑

(लेखिका स्वतंत्र पत्रकार हैं)

मानवाधिकार एवं कन्या भ्रूण हत्या

● दिव्या पांडे

मानवाधिकार का विचार उतना ही पुराना है जितनी मानव सभ्यता। प्रत्येक समाज का संचालन कुछ नैतिक मापदंडों पर होता है। समाज की निरंतरता बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि इन नैतिक मूल्यों का पालन किया जाए तथा यदि कोई व्यक्ति इनका पालन नहीं करता है तो नियमानुसार दंड दिया जाए। सामाजिक जीवन की वे दशाएं जो मानव एवं कानूनसम्मत कार्यों को संपादित करने की पूर्ण स्वतंत्रता दे, मानवाधिकार कहलाती हैं। मानव को प्रकृति द्वारा भी कुछ अधिकार प्राप्त हैं जिन्हें मानवाधिकार कहा जाता है। प्रत्येक नागरिक के लिए इन्हें सुनिश्चित करना संबंधित सरकार का दायित्व है।

मानवाधिकारों के उल्लंघन की स्थिति भयावह होती जा रही है। मानव ही मानव का भक्षक है, यह उक्ति कन्या भ्रूण हत्या के संबंध में चरितार्थ होती है। बालिकाओं की वर्तमान स्थिति के अध्ययन से पता चलता है कि जनसंख्या में उनका अनुपात कम है। पोषण स्तर भी बालकों की तुलना में कम है। मृत्युदर ऊंची है एवं स्कूलों में भर्तीदर कम है साथ ही पढ़ाई बीच में छोड़ देने की दर अधिक है।

नयी शताब्दी में नारी की सर्वथा एक नयी छवि उभर रही है। पिछली सदियों में जो बेड़ियां उसे जकड़े थीं उन्हें तोड़कर आज वह अपनी नयी पहचान बनाने में जुटी हैं। वह न केवल हर क्षेत्र में शीर्ष पर पहुंच रही हैं, वरन भीड़भाड़ भरी महानगरों की बसों में बस कंडक्टर बनकर तथा ट्रेन में चालक बनकर अपने साहस का परिचय दे रही हैं। प्रथम महिला पायलट दूबी बनर्जी ने उड़ान भरकर सबको चमत्कृत कर दिया जिसका अनुकरण कर सौदामिनी देशमुख जैसी अन्य महिलाएं भी इस दिशा में आगे आईं। परंतु महिलाओं की इतनी उन्नति के बावजूद समाज में कन्या भ्रूण हत्या जैसा जघन्य अपराध होना अपने आप में शर्म की बात है। एक ओर नारी सशक्तीकरण का शंखनाद चारों ओर गुंजायमान हो रहा है वहीं दूसरी ओर महिलाओं की संख्या में निरंतर कमी आ रही है। यह कैसा सशक्तीकरण है?

स्त्री एवं पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं। एक पक्ष के बिना दूसरा पक्ष अधूरा है। परिवार केवल पुरुष से ही नहीं बनता वह स्त्री-पुरुष दोनों के युग्म से बना है। स्त्री-पुरुष की इस एक-दूसरे पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति के कारण ही परिवार बने तथा परिवारों से समाज बना। परंतु आज का मानव इस सामाजिक व्यवस्था को विकृत करने पर तुल गया है। स्त्री-पुरुषों के अनुपात में साम्य सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। वस्तुतः नर और नारी एक-दूसरे के पूरक हैं और अन्योन्याश्रित रूप से रहकर ही अपने जीवन को प्रगति पथ पर अग्रसर कर सकते हैं। शास्त्रों में अर्द्धनारीश्वर का वर्णन मिलता है जो नर-नारी के पारस्परिक संबंध को मान्यता देते हैं।

यदि संपूर्ण भारत की तस्वीर देखें तो भारत में स्त्रियों की संख्या में निरंतर कमी दिखेगी। यह एक चिंता का विषय है। यह स्त्री समुदाय पर बढ़ते हुए अत्याचार का द्योतक है। तमाम कानूनों के बावजूद भारतीय समाज में महिलाओं पर अत्याचार घर-घर की कहानी है। फर्क़ सिर्फ़ इतना है कि किसी घर की कहानी उजागर हो जाती है और किसी घर की दीवार के पीछे ही सिसक-सिसक कर, घुट-घुट कर दम तोड़ देती है।

सन् 1950 से पूर्व अनेक देशों में गर्भपात को नियंत्रित करने वाले कानून बहुत कठोर थे। गर्भपात पूर्णतः प्रतिबंधित था। लेकिन अवैध गर्भपात जारी थे। भारत में वर्ष 1972 से पूर्व गर्भवती महिला का जीवन बचाने को छोड़ कर गर्भपात करना अवैध था। 1964 में गर्भपात कानूनों को लचीला बनाने के मुद्दे का अध्ययन करने के लिए शांति लाल शाह की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। 1966 में इस समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर 1971 में भारतीय संसद द्वारा चिकित्सकीय गर्भपात अधिनियम बनाया गया जो पूरे देश में 1 अप्रैल, 1972 से लागू हो गया। यह विश्व के सबसे अधिक लचीले कानूनों में से है।

प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम के अंतर्गत जेनेटिक काउंसिलिंग, जेनेटिक लैब, अल्ट्रासोनोग्राफी केंद्र आदि आते हैं। इन जांचों में गर्भ केवल गुणसूत्री संबंधी विकृति, रुधिर वर्णिक संबंधी रोग, आनुवांशिक उपापचय रोग, लिंग संबंधी आनुवांशिक रोग, जन्मजात विकृतियों का परीक्षण भी किया जा सकता है। परंतु अब इसका दुरुपयोग करके लिंग परीक्षण किया जाने लगा है। गर्भ में कन्या शिशु का पता चलते ही गर्भपात करवा लिया जाता है। सच्चर रिपोर्ट के अनुसार शैक्षिक एवं आर्थिक पिछड़ेपन के बावजूद मुसलमानों में लिंगानुपात राष्ट्रीय आंकड़ों की तुलना में बेहतर है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार मुसलममानों में 0-6 वर्ष तक के बच्चों का लिंगानुपात 950 है। देश में पंजाब, हरियाणा, चंडीगढ़ में स्थिति बहुत ही ख़राब है। इन राज्यों में अगर कानून की धज्जियां उड़ाते हुए बालिका भ्रूण का गर्भपात संभव नहीं हो पाता है और लड़की का जन्म हो जाता है तो उसकी नाभि में तंबाकू रखकर उसे स्वर्गलोक की सैर करा दी जाती है या फिर उसकी परवरिश लापरवाही से की जाती है। इसी कारण शून्य से चार वर्ष तक के आयु वर्ग के बच्चों की मृत्युदर में एक बड़ा हिस्सा लड़कियों का होता है। एक अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष 1 करोड़ 20 लाख लड़कियों का जन्म होता है जिनमें से प्रतिवर्ष 3 लाख लड़कियों की मृत्यु हो जाती है, जो जीवित बचती हैं उनमें से 25 प्रतिशत लड़कियों की मृत्यु कुपोषण एवं स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव में हो जाती है। लड़कियों को पौष्टिक आहार

देना अतिरिक्त भार माना जाता है। बचपन से ही आवश्यक पौष्टिक एवं संतुलित आहार की कमी के कारण विवाह के बाद महिलाएं अनेक रोगों की शिकार हो जाती हैं।

भारतीय दंड संहिता की धारा-312 से लेकर 315 तक में भ्रूण हत्या रोकने संबंधी विभिन्न प्रावधान किए गए हैं। धारा 315 शिशु को जीवित पैदा होने से रोकने या जन्म के पश्चात उसकी हत्या करने के आशय से किए गए कार्य के संबंध में संबंधित व्यक्ति को 10 वर्ष तक का कारावास या जुर्माना या दोनों से दंडित करने के विषय में बतलाती है।

गर्भावस्था की गंभीर अवस्था में नारी को स्वास्थ्य की रक्षा के लिए गर्भपात का जो कानूनी अधिकार मिला है उसका दुरुपयोग इस प्रकार होगा कि समाज में कन्या भ्रूणहत्या जैसी एक नयी समस्या पैदा हो जाएगी ऐसा किसी ने भी नहीं सोचा होगा। अल्ट्रासाउंड सोनोग्राफी विधि से भ्रूण के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। यह परीक्षण गर्भस्थ शिशु की शारीरिक अस्वाभाविकता का पता लगाने एवं उसका निदान करने के लिए किया जाता है परंतु आज कल बहुत से लोग लिंग परीक्षण कराकर कन्या भ्रूण हत्या करवा लेते हैं।

भ्रूण का लिंग परीक्षण करना कानूनी अपराध है। प्रसव पूर्व भ्रूण परीक्षण के दुरुपयोग को रोकने के लिए सन 1994 में प्रसव पूर्व नैदानिक तकनीक नियमन और दुरुपयोग निवारण अधिनियम, 1994 को 1 जनवरी, 1996 से लागू किया गया। इसके अनुसार ऐसा करने वाले व्यक्ति के लिए 5 वर्ष की सजा एवं 50,000 रुपये तक का जुर्माने का प्रावधान किया गया है। बालिका भ्रूण हत्या की सूचना देने वाले व्यक्ति को 10,000 रुपये का इनाम देने का प्रावधान है। यह राशि आरसीएच 2 कार्यक्रम के अंतर्गत संबंधित जिले के मुख्य चिकित्सा एवं स्वास्थ्य अधिकारी के माध्यम से दी जाएगी।

समस्या का मूल कारण

दहेज प्रथा : भारत में विवाह एक महंगा संस्कार है तथा सामाजिक प्रतिष्ठा का विषय है। कन्या पक्ष को दहेज में काफी धन ख़र्च करना पड़ता है। अत: लोग कन्या के जन्म को बोझ मानते हैं।

उत्तराधिकार प्रथा एवं पुराने रीति-रिवाज

सभी जाति एवं वर्गों के रीति-रिवाज और परंपराओं में ऐसी व्यवस्थाएं हैं जो बालिका के उत्थान मार्ग में बाधक है। केवल पुत्र को ही पिता को मुखाग्नि देने का अधिकार है, कुटुंब का नाम भी पुत्र से ही चलता है, पुत्र ही वंश आगे बढ़ाता है तथा माता-पिता के वृद्ध हो जाने पर उनकी देखभाल का अधिकार भी उसी को है। जबकि पुत्री को मात्र एक दायित्व समझा जाता है जो परिवार के संसाधनों के ह्रास का कारण होती हैं।

सामाजिक अंधविश्वास, गलत मान्यताएं, पुरुषों की तुलना में स्त्री को कम योग्य, कम ताक़तवर तथा कम कमाऊ मानना। माता-पिता के स्वर्गवासी होने पर उनका अंतिम संस्कार, पिंडदान, तर्पण और श्राद्ध का अधिकार भी सिर्फ़ पुत्रों को ही प्राप्त है।

तालिका-1

सन्	महिलाओं की संख्या
1901	972
1911	964
1921	955
1931	950
1941	945
1951	946
1961	941
1971	930
1981	934
1991	927
2001	933

स्रोत : यूनिसेफ रिपोर्ट

तालिका-2

लिंगानुपात (0-6 साल)

क्र.	राज्य	1991	2001
1	पंजाब	875	798
2	हरियाणा	879	819
3	चंडीगढ़	899	845
4	दिल्ली	915	868
5	महाराष्ट्र	946	913
6	उत्तर प्रदेश	927	916
7	बिहार	953	942
8	तमिलनाडु	948	942
9	पश्चिम बंगाल	967	960
10	भारत	945	927

समाधान

कानूनों का पालन कठोरता से हो, इसके लिए सख़्ती से क़दम उठाए जाएं। अस्पतालों व डॉक्टरों पर कड़ी निगरानी हो क्योंकि यह घृणित कार्य डॉक्टरों की सहायता से ही चोरी-छिपे किए जाते हैं। सिर्फ़ कानून बनाना काफी नहीं है। भारतीय समाज में जहां धर्म और परंपराएं तमाम चीज़ें तय करती हैं वहां सिर्फ़ कानून बना देना पर्याप्त नहीं है। कानून तो बहुत है परंतु उनका पालन कितना होता है? व्यक्ति स्वयं आगे आकर समाधान की दिशा में सकारात्मक सोच रखेंगे तभी यह समस्या सुलझेगी। कन्या भ्रूण हत्या कोई नैसर्गिक कारण नहीं है, अपितु यह मानव निर्मित समस्या है। हमारी सामाजिक मान्यताओं ने कन्या भ्रूण हत्या जैसे जघन्य अपराध को आम बना दिया है। देश में जन्म व मृत्युदर में कमी लाने के लिए सरकार कई योजनाएं निरंतर चला रही है परंतु लिंगानुपात में साम्य स्थापित करने के लिए सरकार के हाथ में ज्यादा कुछ नहीं है। सरकार कानून बनाकर क्रियान्वयन कर सकती है किंतु कानूनों के अपेक्षित परिणाम तो जनता के सहयोग से ही प्राप्त होंगे। जागरुकता पैदा करने के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं की भागीदारी अहम हो सकती है। यह सेमीनार, वर्कशाप, प्रशिक्षण, वाद-विवाद प्रतियोगिता, निबंध लेखन, आदि का आयोजन कर जन-जन के बीच जाग्रति पैदा कर सकते हैं। बालिकाओं के संबंध में मसलों पर जागरुकता पैदा करने में आकाशवाणी और दूरदर्शन अत्यंत शक्तिशाली माध्यम है। जिस निर्दयता से नारी के अधिकारों का हनन होता है उसे देखते हुए कभी-कभी शोर तो मचता है किंतु अत्याचारों को रोकने का प्रयास बहुत कम किया जाता है।

समय की प्रगति के साथ सामाजिक क्रूर बंधनों से महिलाएं धीरे-धीरे छुटकारा पाती जा रही हैं। परंतु कन्या भ्रूण हत्या पर महिला वर्ग को ही आगे आना पड़ेगा क्योंकि बिना उनकी अनुमति के कोई भी इस प्रकार का जघन्य एवं घृणतम अपराध नहीं कर सकता। महिलाओं का रुझान इस ओर होना चाहिए क्योंकि न्याय का तकाज़ा भी यही है। डॉ. मीतू खुराना इसकी सबसे बेहतर उदाहरण हैं। वह भारत की पहली महिला हैं जिन्होने पीएनडीटी एक्ट के तहत अपने पति के खिलाफ़ रिपोर्ट दर्ज़ कराई। इसी प्रकार यदि समाज की सभी महिलाएं कन्या भ्रूण हत्या का विरोध करेंगी तभी सही मायने में महिलाओं का सशक्तीकरण होगा। ❑

(लेखिका डॉ. हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय सागर, म.प्र. के प्रौढ़, सतत शिक्षा एवं विस्तारविभाग में शोध छात्रा हैं।
ई-मेल : divy.pandey@yahoo.com)

भारतीय लोकतंत्र में मानवाधिकार

● प्रतापमल देवपुरा

भारतीय संविधान में मानव के मूलभूत अधिकारों को पूरा सम्मान मिला है। समाज में व्याप्त विषमता को दूर करने के लिए संविधान में पूरा प्रयास किया गया है। इसमें मूलभूत अधिकारों की सुरक्षा के लिए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समानता एवं न्याय को सुनिश्चित करने की व्यवस्था है। जब तक भारत में आर्थिक लोकतंत्र स्थापित नहीं हो जाता तब तक राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में लोकतंत्र कारगर नहीं हो सकता है। हमारे देश में मानवाधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली को अपनाया गया है। सबको मताधिकार, बहु राजनीतिक दल, कानून का शासन– ये तीन मुख्य विशेषताएं हमारे लोकतंत्र का आधार हैं। न्यायपालिका, स्वतंत्र प्रेस, स्वस्थ जनमत भारतीय प्रजातंत्र के रक्षक एवं प्रहरी हैं। मानव अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए भारत सरकार ने केंद्रीय एवं राज्यस्तर पर मानवाधिकार आयोगों का गठन किया है। धर्म हमारे जीवन को अर्थ प्रदान करने व समाज में शांतिपूर्वक रहने की प्रेरणा देता है। धर्म हमें सही अथवा गलत का ज्ञान कराता है। भारत में हर संस्कृति को अपने ही रूप में फलने-फूलने का मौका मिल रहा है। किसी भी समस्या के बारे में खुली बातचीत की जा सकती है जिससे विवाद का शांतिपूर्वक समाधान निकल सके।

बच्चों के अधिकार

बच्चों के अधिकारों में पांच बातें प्रमुख हैं जीवित रहने का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, विकास का अधिकार, सुरक्षा का अधिकार और विचार प्रकट करने का अधिकार। हमारे देश में अनेक बच्चों को मानव के मूल अधिकार प्राप्त नहीं हो सके हैं। अनेक बच्चे सड़कों पर भीख मांगते हुए तथा जगह-जगह मजदूरी करते हुए दिखाई देते हैं। बच्चों के जीवित रहने के अधिकार की पालना तभी हो सकती है जब माताएं गर्भावस्था में पौष्टिक आहार लें। बच्चों का जन्म स्वस्थ्य परिवेश में हो समय-समय पर टीकाकरण हो तथा उन्हें पौष्टिक आहार मिले। शिक्षा बच्चों की क्षमताओं में विकास करने के साथ ही उन्हें सक्षम एवं आत्मविश्वासी भी बनाती है। अपनी क्षमता के अनुसार शिक्षा ग्रहण करना बच्चों का मूलभूत अधिकार है। किसी भी अच्छे-बुरे कार्य के लिए बच्चों को अपनी सफ़ाई देने का पूरा अधिकार है। बच्चों को पीटना या शारीरिक यातना देना मानवाधिकारों का उल्लघंन है। बालकों की शिक्षा और समुचित विकास पर ध्यान केंद्रित करना ज़रूरी है। बालश्रम के कारण बहुधा बच्चों को बड़े होने पर समाज के प्रति उत्तरदायी और हितकर बनने की संभावनाएं कम हो जाती हैं। बच्चों का शोषण करने, ख़तरनाक एवं ज़ोख़िमकारी कार्यों में लगाने, यौन शोषण करने पर प्रभावी पाबंदी ज़रूरी हैं। बालश्रम की समाप्ति तभी संभव है जब राजनैतिक एवं सामाजिक इच्छाशक्ति बलवती हो।

लैंगिक समानता

हमारे देश में 14 वर्ष की उम्र तक लड़कों की तुलना में लड़कियों की मृत्यु दर बहुत अधिक हैं। क्योंकि लड़के और लड़कियों के लालन-पालन में भेदभाव किया जाता है। इस भेदभाव को समाप्त कर लड़कियों के शारीरिक, मानसिक व शैक्षिक विकास पर बराबरी का ध्यान दिया जाना ज़रूरी है। कुछ स्थानों पर तो लड़कियों के जन्म लेते ही अथवा भ्रूण अवस्था में उनको मार देने की प्रथा प्रचलित है। जन्म के बाद भी लड़कियों के इलाज़ पर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता है। लड़कियों के बड़े होने की प्रक्रिया में उन्हें दुर्व्यवहार भुगतना पड़ता है। लड़की के विवाह के बाद परिवार में उसे एक पत्नी अथवा मां के रूप में मात्र सेवा करना ही दायित्व माना जाता है। उसके अधिकारों की अनदेखी की जाती है। ऐसा कुरीतियों एवं गलत धारणाओं के कारण होता है। लड़कियों को शिक्षित किए जाने में घर व समाज में बहुत अधिक भेदभाव किया जा रहा है। उन्हें शिक्षा के अवसर बहुत कम उपलब्ध कराए गए हैं। बालिकाओं के लिए घर के नज़दीक स्कूल स्थापित करने से स्कूलों में बालिकाओं

की उपस्थिति बढ़ाने में मदद मिलेगी। लड़कियों की व्यावसायिक शिक्षा के लिए व्यवस्था उपलब्ध होनी चाहिए। जहां लड़कियों को घर से बहुत दूर रहकर पढ़ना होता है वहां इनके लिए अलग से छात्रावास की व्यवस्था होना अपेक्षित है। बाल-विवाह रोकने के लिए कानून के अनुसार दोषी व्यक्ति को दण्डित कर दहेज देने व लेने वालों को कड़ी सज़ा देकर उनका सामाजिक बहिष्कार किया जाए ।

महिलाओं के आर्थिक अधिकार

आर्थिक संसाधनों तक महिलाओं की पहुंच होने तथा आर्थिक क्षेत्र में उन्हें समान अवसर उपलब्ध रहने पर ही महिलाओं का सशक्तीकरण हो सकता है। सभी क्षेत्रों में समान कार्यों के लिए समान वेतन दिया जाना कानूनी अनिवार्यता है। महिलाओं के लिए पुरुषों के समान बेकारी, दुर्घटना, छंटनी आदि में आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित करना ज़रूरी है। महिलाओं के लिए सामूहिक बीमा, स्वास्थ्य सेवा तथा छोटे बच्चों के लिए शिशु सदन की स्थापना करने से महिलाओं की सामाजिक कार्यों में भागीदारी बढ़ेगी। महिला उद्यमियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था, व्यापार के लिए कर्ज़ की सुविधा तथा उत्पादन को बाज़ार में बेचने की व्यवस्था करने से महिलाओं के शोषण को रोकने में मदद मिलेगी। ज़मीन तथा अचल सम्पति में महिला के स्वामित्व को सुनिश्चित किया जाना चाहिए। महिलाओं को भी अपने स्वामित्व की सामग्री, घर, खेत गहने आदि को बेचने रहन रखने का अधिकार होना चाहिए। स्त्रियों को संपत्ति में अधिकार सहित सभी मामलों में नि:शुल्क कानूनी सहायता आवश्यक है। मुकदमों के लंबित रहने से स्त्रियों के हितों को नुकसान पहुंचता है। इसके लिए न्यायिक प्रक्रिया सरल बनाकर इन मामलों को जल्दी निपटाना चाहिए। यदि दहेज के मामले को लेकर महिला को सताया जाता है तब उसे कानून की शरण अवश्य लेना चाहिए। स्त्रीधन पर उसका पूरा अधिकार है।

सामाजिक न्याय

समानता एक मूलभूत मानवाधिकार है परंतु अनेक नागरिक इस मूलभूत अधिकार से वंचित हैं। क्योंकि नयी और पुरानी बुराइयां हमारी सामाजिक व्यवस्था के सामने चुनौतियां खड़ी कर रही हैं। जाति प्रथा बरकरार है। दलितों को समाज में सबसे नीचे स्तर के इंसान समझा जाता है। दलित वर्ग को कुछ ऐसे कार्य करने पर मज़बूर किया जाता है, जिन्हें दूसरे वर्ग अशुद्ध मानकर अपने लिए वर्जित समझते हैं। दलितों की ज़र्ज़र आर्थिक स्थिति सामाजिक पक्ष का एक महत्वपूर्ण पहलू है। अशिक्षा एवं निरक्षरता को दूर करने के लिए दलितों की आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन लाना आवश्यक है। राजनीतिक दल दलितों को वोट बैंक समझते हैं इस मानसिकता को समाप्त करना अति आवश्यक है। दलितों में से नेता निर्वाचित हो जाने पर मात्र सुविधाभोगी न रहकर दलित उत्थान में लगना चाहिए। दलितों को अपना जीवन बेहतर बनाने के लिए अवसर नहीं दिए जाते हैं। उनके साथ छुआछूत का बर्ताव करना, भेदभाव रखना संवैधानिक अपराध है। दलितों की सुरक्षा की पुख्ता चेष्टा करनी चाहिए। कुछ लोग प्राकृतिक कारणों से या दुर्घटनावश विकलांग हो जाते हैं। विकलांगों को भी मानव होने के नाते वे सभी अधिकार हासिल है जो एक सामान्य मानव को होते हैं। विकलांगों पर दया के बजाय उनके मानवाधिकारों की चेतना, रक्षा और पालन करना आवश्यक है। ज़रूरत के अनुसार हमें उनकी मदद करनी है। आवश्यक उपकरण- कृत्रिम अंग, ट्राइसाईकिल, सुनने के यंत्र आदि उपलब्ध कराने चाहिए।

नागरिकों के कर्तव्य

- अधिकारों का कर्तव्यों से बहुत गहरा रिश्ता है। कोई भी व्यक्ति अपने अधिकारों का उपभोग तभी कर सकता है जब दूसरे लोग भी अपने कर्तव्यों का पालन करें।
- मानवाधिकारों का लागू होना तभी संभव है जब हम परस्पर अपनी कुछ सामाजिक जिम्मेदारियों को समझें। हमें अपने अधिकारों की मांग करते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि दूसरों के भी कुछ अधिकार हैं।
- हमारी आज़ादी का मतलब दूसरों के विचारों का सम्मान करना है, तभी मानवाधिकारों की रक्षा हो सकेगी। जब हम हमारे अधिकार की बात कहते हैं तो हमें यह भी देखना होगा कि कहीं हम दूसरों के अधिकारों का हनन तो नहीं कर रहे हैं।
- हमारी यह जिम्मेदारी है कि जब हम अच्छे व्यवहार की दूसरों से आशा रखते हैं तब क्या हम उनके साथ भी अच्छा व्यवहार कर रहे हैं?
- विकास कार्यों के लिए सहायता मिलना तभी संभव है, जब हम हमारे हिस्से के करों का नियमित भुगतान करें।
- बोलने की स्वतंत्रता तभी संभव है, जब बोलने पर लोगों के भड़कने से घृणा व हिंसा न फैले।
- जीवित रहने का अधिकार तभी संभव है जब हम आपस के झगड़ों को सुलझाने के लिए किसी दूसरे को नहीं मारें।
- प्रत्येक व्यक्ति को अपना नाम एवं पहचान बनाए रखने का अधिकार है। यह तभी संभव है जबकि दूसरों को भी हम उसका नाम व पहचान दें।
- हमें अपने गांव व शहर की समस्याओं के समाधान के लिए शांतिपूर्ण ढंग से दलीलें पेश करनी हैं। हमें आपस में मिल-बैठकर फ़ैसला करना चाहिए। जब कोई निर्णय ले लिया जाए तो सबको उसकी पालना करनी चाहिए। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

ई-मेल : prnd99@reddifmail.com)

मिट्टी की उत्पादकता बहाली

● रतन मणि लाल

विशेषज्ञों की एक टीम ने किसानों में जैविक खेती के प्रति जागरुकता बढ़ाने की कोशिशें की। उन्हें जैविक और जैव संसाधनों का इस्तेमाल सिखाया गया जिसके आशातीत परिणाम दिखाई दिए

मिट्टी का क्षरण रोकने और उपजाऊपन बहाल करने के अगर प्रभावी उपाय न किए गए तो हरित क्रांति से हुए लाभों पर बुरा असर पड़ सकता है। इसके लिए एक सफल परियोजना तैयार की गई जिसके सुखद परिणाम किसानों को महसूस होने लगे हैं।

मिट्टी के क्षरण में वृद्धि हो रही है और यह उर्वरकों के असंतुलित इस्तेमाल का नतीज़ा है। साथ ही सिंचाई के लिए ज्यादा पानी का प्रयोग बढ़ रहा है जो कृषि वैज्ञानिकों के लिए चिंता का विषय बन रहा है। हाल ही में लखनऊ में राष्ट्रीय कृषि विज्ञान कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसमें ये चिंता साफ दिखी और वैज्ञानिकों ने कहा कि मिट्टी के स्वास्थ में क्षरण के कारण उपजाऊपन में कमी आई है और उगने वाले पौधे कमज़ोर दिखाई देते हैं जिसका साफ असर मानव और पशुओं के स्वास्थ्य पर दिखता है। अगर मिट्टी उत्पादकता की बहाली के निरंतर उपाय न किए गए तो हरित क्रांति से हुए लाभों पर बुरा असर पड़ सकता है।

विशेषज्ञों की एक टीम ने इस संबंध में किसानों में जागरूकता बढ़ाने के प्रयास किए। उन्होंने जैविक खेती और अजैविक तथा जैविक संसाधनों के ज़रिये खेती करने को प्रोत्साहित किया जिसके अच्छे परिणाम दिखाई दिए। इससे यह भी उम्मीद जगी कि जैविक तरीकों के इस्तेमाल से मिट्टी की उपजाऊपन का क्षरण रोका जा सकेगा।

इस सिलसिले में लखनऊ विश्वविद्यालय के ग्राम विकास संस्थान के सोशल वर्क विभाग ने एक परियोजना चलाई जिसके परिणामस्वरूप किसानों को अधिक उपज मिली और मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार आया। इंटीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेंट नाम की इस परियोजना के एक भाग के रूप में एक इंटीग्रेटेड न्यूट्रिशन मैनेजमेंट कार्यक्रम चलाया गया जिसके अंतर्गत किसानों को जैविक सब्ज़ियां उगाने के लिए प्रोत्साहित किया गया और यहीं असाधारण सफलता मिली।

रसायनों के इस्तेमाल से मिट्टी को जो नुकसान हुआ है उसे ठीक करने के लिए जैविक खेती को प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसके अंतर्गत प्राकृतिक संसाधनों का इस्तेमाल किया जाता है और कुछ पोषक तत्वों के सिवाय अन्य रासायनिक पदार्थों का इस्तेमाल मना है। कई फ़सल चक्र अपनाए जाते हैं जिससे मिट्टी को रसायनों से मुक्त किया जाता है और नुकसान की भरपाई के लिए जैविक उर्वरक और जैविक नियंत्रण उपाय किए जाते हैं। जैविक खेती में उन्नत और जीएम किस्म के बीजों का इस्तेमाल मना है। किसान को सुनिश्चित करना होता है कि वो खुद अपने खेतों में ही ऐसी वस्तुओं का इस्तेमाल करें बल्कि अपने आस-पास के किसानों को भी ऐसा करने को कहें ताकि सिंचाई का पानी रसायन मुक्त रह सके। एजेंसियां इन उपायों के लागू करने पर कड़ाई से नज़र रखती हैं और ये एजेंसियां ऐसी खेती और उसकी उपज को प्रमाणित करती हैं और उनके प्रमाणन को अंतरराष्ट्रीय मान्यता प्राप्त है।

जैविक अनाज़ों के इस्तेमाल पर बराबर ज़ोर दिया जा रहा है। इस प्रकार के अनाज़ रसायन मुक्त, सुरक्षित और स्वास्थ्यप्रद होते हैं। जैविक खेती से मिट्टी की उत्पादकता बहाल होती है। उसमें ताज़गी आती है और किसानों और उपभोक्ताओं का स्वास्थ्य सुरक्षित रहता है। जैविक खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है लेकिन उत्तर प्रदेश के किसान लघु किसानों के वर्ग में आते हैं, उनके संसाधन सीमित हैं अत: उनके लिए जैविक खेती की शर्तों का कड़ाई से पालन करना मुश्किल पड़ता हैं।

समेकित कीटनाशक प्रबंधन परियोजना में हानिकारक कीटों की संख्या सीमित रखी जाती है और अनेक तकनीकों का इस्तेमाल करके इनकी संख्या वृद्धि पर नज़र रखी जाती है। कीट नियंत्रण के अनेक तरीके अपनाए जाते हैं। कीट नियंत्रण के लिए रसायनों का इस्तेमाल सिर्फ गिने-चुने अवसरों पर किया जाता है और तब बिल्कुल नहीं किया जाता जब फ़सलों में फूल और फल आने शुरू हो जाते हैं। इससे उपज रसायन मुक्त, सुरक्षित और स्वास्थ्यप्रद रहती है।

समेकित पोषण प्रबंधन कार्यक्रम के अंतर्गत नियमित रूप से मिट्टी का परीक्षण किया जाता है और यह सुनिश्चित किया जाता है कि फ़सलों को समुचित पोषक तत्व मिलते रहें। इसके लिए रासायनिक, जैविक उर्वरकों और वृद्धि में सहायक जीवाणुओं का मिला-जुला तरीका अपनाया जाता है। नीम से तैयार यूरिया का इस्तेमाल करके यूरिया पर निर्भरता कम की जाती है और विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं की सहायता से मिट्टी को उपजाऊ बनाया जाता है। इस प्रकार के तरीके लंबे समय तक अपनाए जाने से धीरे-धीरे रासायनिक उर्वरकों की ज़रूरत कम हो जाती है और आगे चल कर किसान बिना रसायनों के इस्तेमाल के सब्ज़ियों की फ़सलें लेने लगते हैं।

इस परियोजना के प्रमुख अन्वेषक प्रोफेसर आरबीएस वर्मा थे, जो सोशल वर्क के प्रोफेसर हैं। वनस्पतिशास्त्र के पूर्व प्रोफेसर पीएन शर्मा ने सह-प्रधानाचार्य का काम किया। सोशल वर्क डिमार्टमेंट के प्रोजेक्ट ऑफिसर डा. गुरनाम सिंह और वनस्पतिशास्त्र की रिटायर्ड प्रोफेसर, डा. रश्मि राय भी इस परियोजना से संबद्ध थीं।

जहां तक मिट्टी में सुधार का प्रश्न है, शुरू-शुरू में खेतों में परीक्षण से ज़ाहिर हुआ कि छोटे और मझोले किसानों के खेतों की मिट्टी में पोषक तत्व सबसे कम थे जबकि सीमांत किसानों के खेतों में उपजाऊपन ज्यादा पाया गया। ध्यान देने की बात है कि छोटे किसान डाई अमोनियम फास्फेट (डीएपी), यूरिया और कुछ कंपोस्ट खादों का इस्तेमाल करते हैं जबकि औसत दर्जे के किसान प्राय: यूरिया, डीएपी, जिंक, एनपीके जैसे रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल करते रहते हैं। वे कंपोस्ट खाद का भी इस्तेमाल करते हैं। दूसरी ओर मार्जिनल फार्मर्स इस प्रकार के उर्वरक नहीं जुटा पाते, अत: वे पर्याप्त मात्र में रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल नहीं कर पाते। हर वर्ग के किसानों के खेतों की मिट्टी में फास्फेट की कमी पाई गई हालांकि सभी किसान नियमित रूप से डीएपी का प्रयोग करते हैं। इसका मतलब यह है कि फास्फेट मिट्टी के कणों से चिपक जाता है और पौधे उसे प्राप्त नहीं कर पाते। अगर फास्फेट गलाने वाले बैक्टीरिया का भी इस्तेमाल किया जाए तो इस स्थिति में सुधार आ सकता है और पौधों को पोषण मिल सकता है। छोटे किसानों के खेतों में नाइट्रोजन की कमी पाई गई हालांकि अनाज उपजाने के लिए वे यूरिया का इस्तेमाल करते हैं। इस कमी की भरपाई नीम के यूरिया से की जा सकती है। अगर घटिया प्रकार की कंपोस्ट खाद का इस्तेमाल किया जाता है तो उससे मिट्टी का उपजाऊपन बरकरार नहीं रह पाता। सुझाव दिया गया कि किसानों को बेहतर मूल्यवर्धित खाद उपलब्ध कराई जाए ताकि मिट्टी का उपजाऊपन बरकरार रखा जा सके। अधिकांश मामलों में अगली फ़सल उगाने की सिफ़ारिश नहीं की गई हालांकि किसान इस सलाह पर नहीं चल पाए और उन्होंने यूरिया और डीएपी का भी इस्तेमाल किया। भले ही यह इस्तेमाल नाकाफी था और मिट्टी की उत्पादकता में उपजाई जाने वाली हर फ़सल के साथ कमी आती रही। यह भी स्पष्ट दिखा कि कुछ तरह के जैविक उर्वरकों के नियमित प्रयोग से मिट्टी में पोषक तत्व बढ़ गए जो एक सकारात्मक बात थी।

मिट्टी की उत्पादकता बनाए रखने के लिए सुधारात्मक उपाय किए गए और किसानों को जीवाणुओं वाली खाद और नीम की यूरिया स्थानीय संसाधनों से जुटाकर इस्तेमाल करने की प्रशिक्षण दी गई। इसके परिणामस्वरूप मिट्टी में सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या बढ़ गई जिससे फ़सलों की उत्पादकता बढ़ी।

किसानों को सामान्य और ज्यादा क़ीमत वाली फ़सलें उगाने का प्रशिक्षण दिया गया। कुल मिलाकर लखनऊ जिले के विभिन्न गांवों में 482 लाभार्थी थे। इन गांवों में भीखमपुर, भौली, परवतपुर और मानपुर शामिल हैं। इन किसानों को कई मूल्यवर्धित फ़सलों की खेती का प्रशिक्षण दिया गया जिनकी बाज़ार में अच्छी मांग है और जिन्हें बेचकर वे अच्छा लाभ कमा लेते हैं। उन्हें ब्रोकोली, लाल बंदगोभी, चेरी, टमाटर, मक्के और अन्य प्रकार की सब्ज़ियों, भिंडी, लौकी, बैंगन और ककड़ी की फ़सलें जैव नियंत्रण तरीके से उगाने का प्रशिक्षण दिया गया। इसके अलावा कुछ किसानों ने औषधीय पौधों की भी खेती शुरू कर दी। इनमें हल्दी और घीकुआर की खेती शामिल है। किसानों को इन फ़सलों को प्रसंस्कृत करके बेचने का भी प्रशिक्षण दिया गया, जो किसान साधारण मक्के की खेती करने में सक्षम थे, उन्हें विदेशी मक्के की किस्में उगाने को प्रोत्साहित किया गया। इस प्रकार से उगाई फ़सलों को बेचकर किसानों में 300 प्रतिशत से ज्यादा लाभ कमाया। अनेक किसानों ने आगामी फ़सल-चक्र के दौरान ऐसी ही फ़सलें उगाने की इच्छा ज़ाहिर की। ❑

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं।
ई-मेल : ratanmlal@gmail.com)

ख़बरों में

• रेपो रेट में 25 अंकों की बढ़ोतरी

भारतीय रिज़र्व बैंक ने अपनी ताज़ा आर्थिक समीक्षा में रेपो रेट और रिवर्स रेपो रेट में 25 अंकों की बढ़ोतरी की है। इस बदलाव के बाद रेपो रेट 6.5 से बढ़कर 6.75 हो गया है, जबकि रिवर्स रेपो रेट 5.5 प्रतिशत से बढ़कर 5.75 हो गया है। अर्थशास्त्र की भाषा में रेपो रेट वो दर है जिस पर आरबीआई बैंकों को कम अवधि के लिए उधार देता है। बैंक जब आरबीआई में अपना पैसा जमा करते हैं और आरबीआई उन्हें जिस दर से ब्याज़ देता है, वह रिवर्स रेपो रेट कहलाता है। पिछले साल मार्च के महीने से ये आठवीं बार है कि जब आरबीआई ने दरों को बढ़ाया है। पिछली बार आर्थिक नीति की समीक्षा में भी आरबीआई ने दरों में 25 अंकों की बढ़ोतरी की थी। उस वक्त भी मुद्रास्फीति पर चिंता जताई गई थी यह चिंता अब भी कायम है।

खाद्य दरों में दिसंबर में आई ऊंचाइ के बाद गिरावट तो दर्ज़ की गई है, लेकिन यह अभी भी नौ प्रतिशत से ज्यादा है। आरबीआई का कहना है कि जहां अमरीका और यूरो क्षेत्र में स्थिति बेहतर हो रही है, वहीं पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका में आए संकट के कारण तेल के दामों में आई बढ़ोतरी से वैश्विक अर्थव्यवस्था में अनिश्चितता आ गई है। साथ ही खाद्य पदार्थों और दूसरे सामान के दामों में आए उछाल से मुद्रास्फीति को लेकर चिंता उत्पन्न हो गई है। बैंक ने उम्मीद जताई है कि ताज़ा कदम से मुद्रास्फीति पर लगाम लगेगी।

• झालानाथ खनल बने नेपाल के प्रधानमंत्री

नेपाल में नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी (यूएमएल) के अध्यक्ष झालानाथ खनल को देश का प्रधानमंत्री चुन लिया गया। सीपीएन माओवादी ने पुष्प कमल दहल 'प्रचंड' को आखिरी समय में खनल के समर्थन में प्रधानमंत्री पद की दौड़ से हटा लिया। इससे खनल के इस पद पर चुने जाने का रास्ता साफ हो गया साथ ही देश में सरकार के गठन को लेकर पिछले सात महीनों से चला आ रहा गतिरोध खत्म हो गया। संसद के अध्यक्ष ने घोषणा की कि नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी (यूएमएल) के नेता खनल को 601 सदस्यीय संसद में पड़े कुल 557 वोटों में से 368 वोट मिले।

नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी (यूएमएल) संसद में तीसरी सबसे बड़ी पार्टी है और वह कामचलाऊ गठबंधन का नेतृत्व कर रही है। उसे सीपीएन माओवादी का समर्थन मिला। सीपीएन माओवादी ने प्रचंड का नाम प्रधानमंत्री की दौड़ से वापस लेकर खनल को समर्थन देने का फ़ैसला किया। देश में 601 सदस्यों वाली संविधान सभा में यूसीपीएन माओवादी के पास 108 सीटें हैं। दूसरी सबसे बड़ी पार्टी नेपाली कांग्रेस ने आर. सी. पौडयाल को प्रधानमंत्री पद के लिए अपना उम्मीदवाद बनाया था। पौडयाल को 122 वोट मिले। संसद में पार्टी के 114 सांसद हैं। इसके अलावा मधेसी पीपुल्स राइट्स फोरम डेमोक्रेटिक के अध्यक्ष विजय गछादर को 67 वोट मिले।

• सुषमा नाथ बनीं देश की पहली महिला वित्त सचिव

देश की पहली महिला वित्त सचिव सुषमा नाथ को बनाया गया है। इससे पहले वह व्यय सचिव थीं। उन्होंने अशोक चावला की जगह ली है। सुश्री नाथ को 31 मार्च को सेवानिवृत्त होना था, लेकिन सरकार ने उन्हें दो महीने का सेवा विस्तार दिया है। वह अब 31 मई को सेवानिवृत्त होंगी। केंद्र सरकार इससे पहले अशोक चावला को भी सेवा विस्तार दे चुकी है। उन्हें 31 जनवरी को सेवानिवृत्त होना था।

सुश्री नाथ वित्त मंत्रालय की सबसे वरिष्ठ अधिकारी हैं।

• यू.के. सिन्हा सेबी के अध्यक्ष बने

बाजार नियामक भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) के नये अध्यक्ष के तौर पर यूटीआई एएमसी के प्रमुख यू.के. सिन्हा को चुना गया है। सरकार ने श्री सिन्हा को सेबी का अध्यक्ष नियुक्त किया है।

बिहार कैडर के 1976 बैच के आईएएस अधिकारी श्री सिन्हा ने सेबी के तत्कालीन अध्यक्ष चंद्रशेखर भावे का स्थान लिया, जो 17 फरवरी को सेवानिवृत्त हो गए। श्री सिन्हा को 18 फरवरी, 2011 से अगले तीन साल के लिए सेबी का अध्यक्ष नियुक्त किया गया है। इससे पहले वह यूटीआई एएमसी के सीएमडी थे। वह म्युचुअल फंड कंपनियों के संघ के अध्यक्ष भी हैं। श्री सिन्हा इससे पहले जून 2002 और अक्तूबर 2005 तक वित्त मंत्रालय में संयुक्त सचिव के पद पर कार्यरत थे जहां मंत्रालय में वह पूंजी बाजार, ईसीबी, पेंशन सुधार और विदेशी मुद्रा विनिमय प्रबंधन का काम देखते थे।

• पंडित भीमसेन जोशी नहीं रहे

हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के पुरोधा और जादुई आवाज़ के धनी पंडित भीमसेन जोशी का गत जनवरी माह में देहावसान हो गया। वे सत्तासी वर्ष के थे।

राष्ट्रपति प्रतिभा पाटील, प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह, यूपीए अध्यक्ष सोनिया गांधी और देश के प्रमुख नेताओं व मुख्यमंत्रियों ने उनके निधन पर गहरा दुख व्यक्त किया। संगीत जगत की हस्तियों ने उनके देहावसान को शास्त्रीय संगीत जगत के लिए भारी क्षति करार दिया है।

चार फरवरी 1922 को कर्नाटक के धारवाड़ जिले में गडग में जन्मे भीमसेन जोशी को संगीत से लगाव घुट्टी में मिला। बचपन से ही वे योग्य गुरु की तलाश में भटकते रहे। ठुमरी के उस्ताद अब्दुल करीम खान को वे अपना मानसिक गुरु मानते थे। ग्वालियर दरबार के उस्ताद हाफिज अली खां की शागिर्दी में उन्होंने सुरों की कई बारीकियां सीखीं। लेकिन उन्हें शोहरत मिली वर्ष 1946 में जब पुणे के एक समारोह में गुरु गंधर्व स्वामी के साठवें जन्म दिन पर उन्होंने सुरों का कमाल दिखाया।

किराना घराने के कोहिनूर कहे जाने वाले पंडित भीमसेन जोशी दमदार खरज, ओजस्वी सुर और सांस में बेमिसाल नियंत्रण के लिए दूसरे शास्त्रीय गायकों से अलग थे। बचपन से लेकर जवानी तक उस्तादों की संगत में उन्होंने जो कठोर रियाज़ किया, उसकी झलक उनकी रागदारी और सुरों पर पकड़ से दिख जाती थी। खयाल के तो वे लासानी गायक थे।

उन्हें कई फ़िल्मों में शास्त्रीय रंग देने का अवसर भी मिला।

हिंदी फ़िल्म *बसंत बहार* में उनकी आवाज़ का जादू देखने को मिला। संगीत सम्राट तानसेन के जीवन पर आधारित एक बांग्ला फ़िल्म में उन्होंने ध्रुपद गायक के तौर पर आवाज़ दी। स्व. जोशी की संत वाणी और मराठी भक्ति संगीत का ही असर था कि वे महाराष्ट्र, कर्नाटक में आम लोगों के गायक के रूप में जाने गए।

भारत रत्न जोशी सभी प्रमुख संगीत सम्मानों से नवाज़े गए। उनकी विलक्षण प्रतिभा का लोहा देशभर के गायकों ने माना। 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' में कई आवाज़ें हैं, पर पंडित जी का ओजस्वी सुर चमत्कारी प्रतीत होता है। ❑

दीक्षांत

समाजशास्त्र

By

DR.S.S.PANDEY

सामान्य अध्ययन & CSAT

By

DR.S.S.PANDEY &TEAM

हमारे संस्थान के सफल छात्र

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा हेतु नया बैच प्रारम्भ

WORKSHOP

सामान्य अध्ययन	समाजशास्त्र
31 May 1 PM	14 June 5 PM

MAINSSPECIALPROGRAMME

• नवीन घटनाओं एवं नवीन सैद्धांतिक विकास के साथ सम्बद्ध करते हुए अध्यापन • प्रश्नोत्तर परिचर्चा कार्यक्रम जिसमें संभावित प्रश्नों के उत्तरों की रूपरेखा पर चर्चा एवं **UPSC** में पूछे गए 10 वर्षों के प्रश्नों की समीक्षा • राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय, राजनैतिक, आर्थिक, समसामयिक व सामाजिक विषयों की तैयारी हेतु विश्लेषणात्मक प्रशिक्षण व्यवस्था • **PCS**परीक्षा हेतु विशेष कक्षा कार्यक्रम • सामान्य ज्ञान अभिवर्धन पर विशेष बल • **NCERT,IndiaYearBook,EconomicSurvey,Hindu**आदि पर आधारित परीक्षण व्यवस्था • त्रिस्तरीय जांच परीक्षा - 1. प्रत्येक दिन **ClassTest,** 2. प्रत्येक सप्ताह **UnitWiseTest, 3.TestSeries**

सीट आरक्षित कराने हेतु भेज *RegistrationFee-Rs.5,000/-(Adjustableinfee)*

DISTANCE Education Programme

SOCIOMAINS	GSMAINS	GSPT
Rs. 8000/-	Rs. 10,000/-	Rs.5000/-
• StudyMaterial	•StudyMaterial	•StudyMaterial
•ClassNotes	•ClassNotes	•ClassNotes
• 10T ests	• 10T ests	• 10+ 10T ests

PleaseSendDDinfavourofDikshantEducationCentre,payableatDelhiwith2PassportSizePhotographs.

TATA Mc Graw Hill से प्रकाशित पुस्तकें

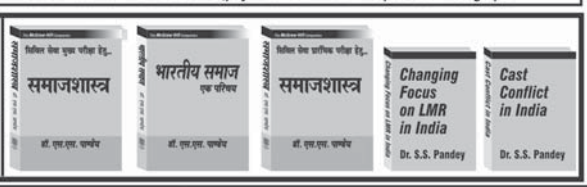

DikshantEducationCentre

307-309-310,JainaBuildingExtension,CommercialComplex,Dr.MukherjeeNagar, Delhi-110009,Ph.:011-27652723,9868902785,E-mail:dikshantias2011@gmail.com

YH-4/11/6

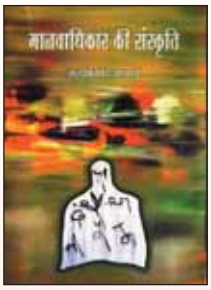

कृति : मानव अधिकार की संस्कृति; **लेखक** : नंद किशोर आचार्य; **प्रकाशक** : वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर; **प्रथम संस्करण** : 2010 **पृ.** : 117; **मूल्य** : ₹ 150

अथ मानव अधिकार गाथा

● **रचना**

मानव अधिकार की अवधारणा मानवता के इतिहास से जुड़ी हुई है। भारत में लोकतंत्र की रक्षा और लोक कल्याण हेतु मानव अधिकारों की स्थापना का अपना अलग ही महत्व है। भारतीय मनीषियों व विचारकों ने अपने चिंतन के आरंभ से ही हमेशा मनुष्य की अस्मिता को केंद्रीय परिधि में रखते हुए उसे महत्वपूर्ण स्थान दिया है। यहां पर मनुष्यता या मानव धर्म को सबसे श्रेष्ठ या ऊंचा धर्म कहा गया है। इसी बात को *महाभारत* के रचयिता महर्षि वेद व्यास ने इस प्रकार कहा है: *न मानुषात परतरं किंचिदस्ति।* अर्थात मनुष्य से परे या ऊंचा कोई दूसरा धर्म नहीं है।

राष्ट्र कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इसी बात को मानुषेर धर्म की श्रेष्ठता कहा है। इसी प्रकार हमारी संस्कृति में मनुष्यता या इंसानियत को सबसे बड़ी कसौटी मानने पर सदियों से बल दिया जाता रहा है। पर बदलते हुए समय के साथ समाज में परिवर्तन आना भी स्वाभाविक था। अच्छे आदर्शों के बावजूद समाज में अनेक तरह के विकार पैदा हुए जिसके अनेक ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक कारण रहे होंगे तथा इतना तो सही है कि कर्म के स्थान पर जाति, राजा-प्रजा में अंतर तथा संकीर्णता तथा धर्मांधता के कारण समाज में भेदभाव व शोषण को निरंतर बढ़ावा मिला। इन सब का नकारात्मक परिणाम घृणा, हिंसा, भाईचारे की कमी तथा सामाजिक द्वेष के रूप में हमारे सामने है। आज समाज के ताने-बाने को कई तरीके से चुनौती मिल रही है जो चिंता का विषय है। इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि अपने अधिकारों के प्रति आम जनमानस में जागरुकता अभियान का श्रीगणेश किया जाए तथा उन्हें सजग भी किया जाए। लोकतंत्र में सामाजिक सद्भाव और न्यायपूर्ण व्यवस्था स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि मानव अधिकार विषयक प्रावधान व चिंतन सभी के लिए सुलभ हों और उसकी भाषाओं में हों।

उपर्युक्त प्रसंग में नंद किशोर आचार्य द्वारा रचित और वाग्देवी प्रकाशन द्वारा *मानव अधिकार संस्कृति* शीर्षक से प्रकाशित कृति एक महत्वपूर्ण एवं सतर्क प्रयास के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज़ कराती है। पुस्तक के संबंध में मस्तराम कपूर की निम्न टिप्पणी देखी जा सकती है : अधिकार शब्द से ही ऐसा ध्वनित होता है गोया यह किसी के द्वारा दी गई बख्शीश हो। संभवत: इसीलिए राज्यों द्वारा शिक्षा, रोज़गार, सूचना, आरक्षण, वोट आदि के अधिकारों को चुनाव के समय बांटे जाने वाले तोहफों की तरह बांटा जाता है। इन अधिकारों की बारीकी से छानबीन करने की आवश्यकता है क्योंकि ये अधिकार हमारी आंखों पर पर्दा डालने के लिए भी हो सकते हैं। यह पुस्तक इसमें हमारा मार्गदर्शन कर सकती है।

पुस्तक के 21 अध्यायों में मानव अधिकार से जुड़े सभी महत्वपूर्ण पक्षों तथा अवधारणाओं पर बहुत ही बारीकी एवं गंभीर मंथन के साथ विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। नंदकिशोर आचार्य हिंदी के एक ऐसे सृजनधर्मी रचनाकार हैं जो अपने नये चिंतन के लिए न केवल विख्यात हैं अपितु वे उसमें डूबकर हमेशा नये अर्थ को खोजने के लिए बेचैन भी रहते हैं। आचार्य जी के बारे में मस्तराम कपूर की निम्न महत्वपूर्ण टिप्पणी देखी जा सकती है : आचार्य जी के निबंधों को पढ़ना विचित्र अनुभवों से गुजरना है। सुकरात के संवादों को पढ़ते समय जैसे साधारण बातचीत के बीच अचानक प्रकाश के विस्फोट की अनुभूति होती है और पाठक विस्मित रह जाता है, कुछ-कुछ वैसी ही अनुभूति होती है जब आचार्य जी के निबंध सत्य की परतों को धीरे-धीरे छीलते जाते हैं और बीच-बीच में नये विचारों के स्फुलिंत बिखेरने लगते हैं। पुस्तक में इस कथन की अनेक बानगियां मिलेंगी– *मानव सब चीज़ों का पैमाना है तो मानव का पैमाना क्या है? जिन समाजों में ममेतर को मनुष्य ही नहीं माना गया, उन्हें सभ्य कैसे मानें? स्वतंत्रता के दायित्व से पलायन मानवत्व से पलायन है। मानवाधिकारों को पुष्ट करने वाला समाज अनिवार्यत: अहिंसक होगा। समता, स्वतंत्रता और बंधुता अहिंसा के ही सिद्धांत हैं।*

मानव अधिकारों के विविध आयामों को समेटती हुई सरल, सुंदर, सूचनाप्रद एवं सुरुचिपूर्ण भाषाशैली में लिखी गई इस पुस्तक में हिंदी समाज के समक्ष एक महत्वपूर्ण कमी को पूरा करने का अद्वितीय प्रयास किया गया है जिसके लिए लेखक बधाई के पात्र हैं।

पुस्तक के प्रथम दो अध्याय मानव अधिकारों की राजनीतिक एवं दार्शनिक व्याख्या की पूर्व पीठिका के नये आयाम प्रस्तुत करते हैं। साथ ही इस अध्याय में मानव अधिकारों की यथार्थवादी अवधारणाओं को, नये जीवनदर्शन को नये एवं उच्च तर्कों के साथ परिभाषित करने का प्रयास किया गया है, जिसके घेरे में संपूर्ण जीवन दर्शन एवं सामाजिक व्यवस्था अपने आप आ जाती है। लेखक की दृष्टि में मानव अधिकारों की संकल्पना की बुनियाद मनुष्य को सब कुछ का पैमाना मानना है क्योंकि उसके नज़रिये में मनुष्य मानवता की जड़ है और मनुष्य ही एकमात्र सत्य है। लेखक का चिंतन निरंतर इस बात पर बल देता है कि मनुष्य के सर्वांगीण विकास के साथ-साथ आवश्यक एवं युगानुकूल निर्माण मानव अधिकारों की वास्तविक संकल्पना की आधार पीठिका है। उसकी दृष्टि में मानवीय विकास का अर्थ है मनुष्य के विवेक, गरिमा, स्वतंत्रता और रचना धर्मिता का विकास। इस संबंध में हेरल्ड जे. लास्की के निम्न कथन को हमेशा साथ रखने का संदेश देता हुआ लेखक कहता है कि "सच्ची स्वतंत्रता ऐसे समाज में नहीं रह सकती जिस में उसकी अभिव्यक्ति को रोकने के इच्छुक वर्ग मौजूद हों, जिसके पास ऐसा करने के लिए शक्ति हो और जो इस उद्देश्य के लिए राज्य का प्रयोग कर सके। स्वतंत्र विचार वहीं संभव है जहां कि आर्थिक स्वतंत्रता हो।"

पुस्तक का तीसरा अध्याय मानवपरक अर्थव्यवस्था की ज़रूरत पर केंद्रित है जिसमें मानव अधिकारों के आर्थिक पक्ष को केंद्र में रखते हुए विभिन्न कोणों से उस पर सतर्क हस्तक्षेप के साथ गंभीरता से विचार किया गया है। लेखक का यह भी मानना है कि संविधान की 22वीं धारा में सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकारों के साथ आर्थिक अधिकारों को भी न केवल आवश्यक माना गया है अपितु उसमें उसकी गरिमा और व्यक्ति के स्वतंत्र विकास की झलक का पैमाना भी माना गया है। वह इसी अध्याय में आगे कहते हैं कि बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक व्यक्ति को समान पारिश्रमिक दिया जाएगा। लेकिन वह इस बात पर चिंता भी ज़ाहिर करते है कि संविधान की इस धारा का सही तरीके से अनुपालन नहीं हो रहा है। लेखक का यह भी मानना है कि हमारी अर्थव्यवस्था केवल ऐसी नहीं होनी चाहिए कि जो प्रत्येक व्यक्ति को उसके आर्थिक अधिकारों को उपलब्ध करवा सके अपितु वह ऐसी भी हो जो अन्य क्षेत्रों में भी मानव अधिकारों को संपोषित करने वाली हो।

पुस्तक के मध्य के कुछ अध्याय मानव अधिकारों की नयी संकल्पनाओं पर आधारित हैं, जो न केवल अपने देश में, अपितु संपूर्ण विश्व में एक संवाद एवं बहस के आह्वान का श्रीगणेश करते हैं। मानव अधिकारों से संबंधित कुछ नये बिंदुओं पर लेखक ने अपनी खुली विचारधारा का परिचय देते हुए एक नयी बहस का आगाज़ किया है। उन्होंने 'हड़ताल का अधिकार' और 'लोकतंत्र' नामक लेख में हड़ताल के अधिकार पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले से अपनी असहमति जताते हुए लोकतांत्रिक देश में इसकी प्रासंगिकता को वैध ठहराया है। साथ ही लेखक ने स्पष्ट रूप से कहा है कि विचारधारात्मक मसलों को न्यायालय में नहीं अपितु संसद में तय किया जाना चाहिए।

रोज़गार के अधिकार में लेखक ने आर्थिक आधार पर अगड़ों को आरक्षण देने के राजनीतिक दलों के समर्थन को रोज़गार की मूल समस्या से लोगों का ध्यान बंटाने का प्रयास मानते हुए सभी नागरिकों के लिए उचित रोज़गार की व्यवस्था करना राज्य का दायित्व माना है। छठे अध्याय में लेखक ने मुस्लिम समाज की महिलाओं की गरिमा की रक्षा के लिए मुस्लिम कानून में संशोधन की वकालत की है क्योंकि 'वर्तमान समाज-व्यवस्था' नामक लेख में लेखक ने चीन के तथाकथित आर्थिक विकास पर प्रहार करते हुए अमीरी और गरीबी के बीच बढ़ती खाई का जिक्र किया है साथ ही उसके लिए मुक्त बाज़ार की नीति एवं एकदलीय निरंकुश शासन को जिम्मेवार ठहराया है।

प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक एवं चिंतक नंद किशोर आचार्य की यह पुस्तक केवल एक किताब ही नहीं अपितु एक दुर्लभ दस्तावेज़ है जिसमें मानव अधिकारों के जीवन दर्शन को व्यापक अर्थ देते हुए उसमें नयी-नयी संकल्पनाओं को पिरोने का सार्थक प्रयास किया गया है। साथ ही यह पुस्तक उन विद्यार्थियों-शोधार्थियों के लिए मील का पत्थर साबित हो सकती है, जो मानव अधिकारों के क्षेत्र में शोध कर रहे हैं। ❑

अब उपलब्ध है

वार्षिक संदर्भ ग्रंथ

भारत 2011

देश के विकास की विश्वसनीय और अद्यतन जानकारी के लिए

☐ अर्थव्यवस्था ☐ विज्ञान और तकनीक ☐ सामाजिक विकास

☐ शिक्षा ☐ कला और संस्कृति ☐ राजनीति

मूल्यः 345 रुपये

अपनी प्रति यहां से खरीदें :

हमारे विक्रय केंद्रः • **नई दिल्ली** (फोन 24365610, 24367260)• **दिल्ली** (फोन 23890205) • **कोलकाता** (फोन 22488030) • **नवी मुम्बई** (फोन 27570686) • **चेन्नई** (फोन 24917673) • **तिरुअनंतपुरम** (फोन 2330650) • **हैदराबाद** (फोन 24605383) • **बेंगलूर** (फोन 25537244) • **पटना** (फोन 2683407) • **लखनऊ** (फोन 2325455) • **गोवाहाटी** (फोन 26656090) • **अहमदाबाद** (फोन 26588669)

प्रतियां प्रमुख पुस्तक केंद्रों में भी उपलब्ध हैं

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:
व्यापार व्यवस्थापक प्रकाशन विभाग,
सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली
फोन. 011–24365610, 24367260, फैक्सः 24365609

ईमेलः dpd@mail.nic.in
dpd@hub.nic.in
वेबसाइटः www.publicationsdivision.nic.in

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

DPDB-H-11/05

सत्यमेव जयते

Empowering Women

INTERNATIONAL WOMEN'S DAY
8TH MARCH, 2011

Smt. Sonia Gandhi
Hon'ble Chairperson
NAC

Dr. Manmohan Singh
Hon'ble Prime Minister

Smt. Krishna Tirath
Hon'ble MoS (IC) for Women & Child Development, Govt. of India

THE CREATOR, THE CARETAKER, THE FIGHTER, THE ACHIEVER
WOMAN - IN HER NUMEROUS FACETS
DESERVES THE BEST

PROGRAMMES FOR THE ADVANCEMENT OF WOMEN

- Support to Training & Employment of Women
- Hostels for Working Women
- Creches for children of working mothers
- Nutrition & Healthcare under ICDS
- Welfare & Support Services
- Conditional Maternity Benefits
- Loans for Income Generation & Asset Creation through Rashtriya Mahila Kosh.

Conferment of

Stree Shakti Puraskar 2010

at

Vigyan Bhawan

by

Smt. Krishna Tirath

Hon'ble Minister of State (Independent Charge)
Ministry of Women & Child Development

davp46101/13/0036/10-11

Ministry of Women and Child Development
A, Wing, Shastri Bhavan, New Delhi-110001, India

Towards a new dawn

प्रकाशक व मुद्रक अरविंद मंजीत सिंह, अपर महानिदेशक द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए ब्रजबासी आर्ट प्रेस लिमिटेड, ई-46/11, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेस-2, नयी दिल्ली-110 020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003 से प्रकाशित। वरिष्ठ संपादक : राकेशरेणु

YH-04/11/3

Licenced under U (DN)-53/09-11
आर.एन.आई. 951/57
R.N.I. 951/57

रजि.सं.डीएल (एस)-05/3231/2009-11 तथा डाक व्यय की पूर्व अदायगी के बिना डाक में डालने के लिए लाइसेंस-प्राप्त
Reg. No. D.L.(S)-05/3231/2009-11 Licenced to post without pre-payment at RMS, Delhi
26 मार्च, 2011 को प्रकाशित • 29-30 मार्च, 2011 को डाक द्वारा जारी

JUST RELEASED

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्

अध्यापक पात्रता परीक्षा

(TEACHER ELIGIBILITY TEST)

अंग्रेजी संस्करण भी उपलब्ध हैं

उपकार प्रकाशन की उपयोगी पुस्तकें

द्वितीय प्रश्न-पत्र
सामाजिक अध्ययन अध्यापक
(कक्षा VI–VIII के लिए)

Code 2092 • ₹ 235/-

Code 2093 • ₹ 205/-

द्वितीय प्रश्न-पत्र
गणित एवं विज्ञान अध्यापक
(कक्षा VI–VIII के लिए)

प्रथम प्रश्न-पत्र
(कक्षा I–V के लिए)

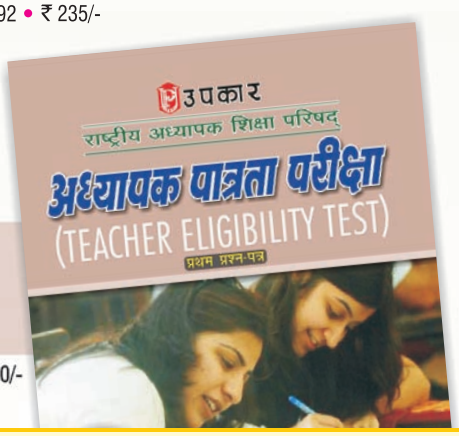

Code 2094 • ₹ 190/-

उपकार की पुस्तकें
सर्वश्रेष्ठता का विकल्प नहीं

उपकार प्रकाशन
• E-mail : care@upkar.in
• Website : www.upkar.in

2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा-282 002 फोन : 4053333, 2531101, 2530966; फैक्स : (0562) 4053330
ब्रांच ऑफिस : • 4845, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-2, फोन : 011-23251844/66
• 1-8-1/B, आर. आर. कॉम्पलेक्स (सुन्दरैया पार्क के पास), बाग लिंगमपल्ली, हैदराबाद-44, फोन : 040-66753330

YH-04/11/1